राजस्थान साहित्य अकादमी की मासिक पत्रिका

मधुमती

अंक ७ जुलाई, '९१ वर्ष ३०

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

सम्पादक

डॉ० दयाकृष्ण विजय

□

प्रकाशक :

डॉ० लक्ष्मीनारायण नन्दवाना

□

सम्पर्क :

राजस्थान साहित्य अकादमी,

सैक्टर-४, हिरणमगरी,

उदयपुर—३१३ ००१

दूरभाष : ८३७१७

□

मूल्य :

वार्षिक २५ रु. मात्र

एक प्रति २.५० रु.

□

मुद्रक :

ललित कुमार टण्डन

महावीर प्रिन्टिग प्रेस

चेतक मार्ग, उदयपुर

दूरभाष : २४३६०

मधुमती

अनुक्रम

कविताएँ

किताबें

आवरण

कृति

प्रसंगवश

मृत्यु का दर्शन : संदर्भ एक दिवंगत का

बीज का उगना बढ़ना जितना सत्य है उतना ही वृक्ष का गिरना भी सत्य है। 'जयते ध्रुवोर्मृत्युः' जो उत्पन्न हुआ है, वह देर अबेर एक दिन नष्ट होगा ही। यह एक भौतिक सत्य है। चिरञ्जीवी और मृत्युञ्जयी दो भिन्नार्थक शब्द हैं। एक दीर्घायु का बोध कराता है तो दूसरा मृत्यु को जीत अजर अमर हो जाने का। चिरंजीवी तो देखे हैं, किन्तु मृत्युञ्जयी नहीं। जिसे मृत्युञ्जयी कहा गया है, वे भी आज तक अदृष्ट हैं। कहीं दिखते नहीं। जो भौतिक आंखों से नहीं दिखे वह भौतिक सत्य नहीं कहा जा सकता। नाश सृजन का ही दूसरा नाम है। बीज का नाश एक नये वट वृक्ष का विश्वास है। वृक्ष बीज का अन्तरण है और बीज वृक्ष का। यह एक सार्ष्टिक परम्परा है। वंशावली है एक से अनेक होने की। बीज की नष्टता का फिर दुःख क्यों? दुःख मोह का उत्स है। मोह एक विभ्रम है, एक अज्ञान है, जो कर्म से जीव को बांधे है। जन्मान्तरवाद के मूल में यही कर्म बंधन है। मृत्यु जीवन की नियति है। असंगत इसमें कुछ नहीं। असंगति तब होती है जब फल पकने से पूर्व ही टूट गिर जाये। पके फल का टूटना तो उसकी अपनी नियति है। पका फल मीठा होता है। मीठापन ही जीवन है।

आत्मा अमर है। वह जीर्ण वस्त्रों की भांति अपना परिधान बदलती है। आत्मा एक अखण्ड आनन्दमयी चेतन सत्ता है। जो परिधान वह धारण करती है वह तो भौतिक है जड़ है। पंच तात्विक है। तत्व नष्ट होकर तत्व में ही मिलता है। आकाश आकाश में, वायु वायु में, अग्नि अग्नि में, जल जल में और पृथ्वी पृथ्वी में। जो व्यक्त है, वह जड़ है। नष्ट होने वाला है। उसकी चिन्ता विद्वान नहीं करते हैं। आत्मा तत्वों से गुंथी भी है और पृथक भी है। वह शरीर में एक स्थान पर केन्द्रित भी है और व्याप्त भी है। निद्रा में यह चारों ओर से सिमट अपने केन्द्र में समाहित हो जाती है और जाग्रति में मेरुदण्ड के चौदह जोड़ों से दो दो रेशों में निकल सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त किये रहती है। यह चेतन सत्ता सर्वथा निर्विकार निर्लिप्त रहती है। यह सर्वव्यापी सर्व शक्तिमान अजन्मा अविनाशी है। शरीर से जब तक कर्म के बंधनों में जीव बंधा है, यह बंधी रहती है। इसी चेतन्य सत्ता की यह सृष्टि एक खेल है। एक सर्प का रज्जु-भ्रम है। पानी की सतह पर सूर्य बिम्ब का कंचनी विभ्रम है। इस स्वप्न सृष्टि में मनुष्य एक सपना ही देख रहा है। सच कुछ भी नहीं है। न किसी का कोई उदय है न

अस्त । न किसी का सृजन है न नाश । न किसी का 'उद्भव है न किसी का अन्त ।' हम इस स्वप्न को देख कर भी सच्चा माने हैं । दुखी होते हैं क्योंकि भौतिक प्राणी हैं । हमारी दृष्टि भौतिक है । उसे दिव्य बनाना सरल नहीं है ।

सुख और दुःख जीवन डाल के दो पुष्प हैं । सुख खिला कुसुम है और दुःख मुरझाया । सुख का सूखना ही दुख का जनक है । खिले फूल का मुरझाना भी उतना ही सत्य है, जितना उसी डाल पर नये फूल का खिल मुस्कराना । उदय और अस्त का यह खेल चल रहा है । चलता रहेगा । सपना है तो भी हम देखते रहेगें देखते रहेगें ।

फूल झर जाता है किन्तु वह झर कर भी दे जाता है सृष्टि को एक मधुर गंध । यह गंध ही फूल का इतिहास है । व्यक्तित्व है कृतित्व है उसका । यह गंध ही बांधे रखती है पूरे वृक्ष से हमें । हम जो भोक्ता हैं । गंध की स्मृति भर, फूल को ही नहीं, वृक्ष को आंखों के आगे ला देती है । गंध का गुणात्मक बोध, वृक्ष का महत्व बढ़ा देता है ।

ऐसी ही महत्व की एक वृक्ष की डाल पर खिला था, एक साहित्यिक कुसुम । डॉ. प्रभाकर माचवे । जिसकी अब गंध शेष है, वृक्ष का डाल का महत्व बताने के लिए । गंध ऐसी, जो दिशा दिशा फैली, अपने होने का परिचय दे रही है ।

संवेदन, बोध-वृत्ति या संस्कारजन्य ज्ञान का द्योतक है । हृदय उसकी भाव-भूमि है । इन्द्रियों से परिमुक्त विषयों का ज्ञान इसका अधिष्ठान है । स्मृति इसे गहराती है । संबंध अकुलाते हैं ।

किसी को पढ़ कर या उसके संबंध में कुछ प्रशंसात्मक सुनकर, उसे देखने की लालसा सहज ही जग जाती है । ऐसा ही कुछ था, जब प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर में मैंने उन्हें देखा ही नहीं, एक ही साथ एक ही बस में कुछ काल चले भी । वे जोधपुर की डॉ. रमासिंह से कुछ बतियाये थे । अचकन से ढकी ऊंची स्थूल देह अविस्मरणीय रही । दिल्ली में फिर मिले । मेरी कविता पुस्तक 'श्वेत शिखरों पर धूप बिम्ब' का विमोचन उन्होंने ही किया । वहीं पढ़कर एक रचना स्वयं सुनाई । कुछ मुझसे सुनी । सराहीं । तब परिचय प्रत्यक्ष और प्रगाढ़ हुआ ।

इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि दुःख का प्रकटीकरण भी आर्थिक या स्वार्थिक आधारों पर हो रहा है । ज्ञान विज्ञान की कसौटी पर नहीं । महत्ता पदों की है, कृतित्व की नहीं । राजनीति महाभक्षिणी है । वह ज्ञान और श्रम दोनों को निगल जाती है । मानों इनका कोई अस्तित्व ही न हो । ऐसी ही अविवेकिता में एक चर्चनीय अचर्चित होता दिख रहा है । साहित्याकाश का एक चमकता नक्षत्र टूट गया । संस्कृति की डाल पर खिला फूल झर गया । व्यक्तित्व की गंध शेष रह गई । आवश्यकता है, उसे गुनने गुनाने की । परखने समझने की । मोल तोल करने की । पहले नहीं किया, तो अब तो करें दिवंगत आत्मा को यही सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी उसकी शान्ति के लिए । इन्हीं शब्दों के साथ श्रद्धास्पद विनत नमन मेरी और मधुमती परिवार की ओर से उन्हें ।

डॉ० दयाकृष्ण विजय

स्वच्छंदवादी काव्य में दिक्-काल सर्जना

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

प्रवेश :

स्वच्छंदवादी काव्यधारा छायावादी काव्य के आगे की कड़ी कही जा सकती हैं, लेकिन दूसरी ओर, उसमें ऐसे भी तत्व मिलते हैं जो छायावादी भावभूमि से कुछ अलग अस्तित्व रखते हैं— इनमें से सबसे महत्वपूर्ण गीत विधा का एक ऐसा विकास है जिसमें सूक्ष्मता और व्यंजना के स्थान पर अपेक्षाकृत स्थूलता और लक्षणा का वह रूप प्राप्त होता है जो जागतिक जीवन स्थितियों से सीधे जुड़ता है । इसका फल यह हुआ कि इस काल के कवियों ने दिक्काल के जागतिक रूप को भिन्न रूपाकारों और बिम्बों के द्वारा संकेतित किया और साथ ही दिक्काल के तात्विक या पराजागतिक संदर्भों को यदा कदा संकेतित तो अवश्य किया है (जैसे दिनकर : नरेन्द्र शर्मा) पर उसमें वह चिंतन एवं रहस्यमयता का पुट नहीं मिलता है जो हमें छायावादी काव्य में दृष्टव्य है । इसी के साथ एक अन्य तत्व यह भी है कि इस काल के कवियों ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह अधिक ग्राह्य है क्योंकि वह जन आकांक्षाओं के अधिक निकट है । बच्चन, दिनकर और अंचल की भाषा इसी प्रकार की है, लेकिन दूसरी ओर नरेन्द्र शर्मा और कहीं-कहीं दिनकर की भाषिक संरचना तत्सम प्रधान है, और इसी से उनकी भाषा अपेक्षाकृत क्लिष्ट भी हो गयी है, पर नितांत बोधगम्य नहीं । इसका कारण यह है कि इन कवियों ने दिक् काल को अपने-अपने तरीके से ग्रहण किया है, और वह भी समय संदर्भ के अनुसार जिसमें विचार एवं संवेदन की भिन्न भंगिमाएं प्राप्त होती है ।

इसी के साथ, एक अन्य तथ्य यह है कि इस काव्य धारा में व्यक्तिगत राग-विरागों का महत्व अवश्य है, लेकिन इसी के साथ-साथ सामूहिक या प्रगतिशील चेतना का स्वर भी इस काव्य धारा में प्राप्त होता है । उस समय के काल बोध में इस तत्व का भी योगदान है, क्योंकि मार्क्सवादी चिंतन का प्रभाव इस धारा में यदा-कदा प्राप्त होता है । काल दिक् बोध की दृष्टि से इस काव्य धारा में उपर्युक्त दो विरोधी प्रवृत्तियों का द्वन्द्व प्राप्त होता है, लेकिन इस द्वन्द्व से जो चीज उभर कर आती है, वह है राष्ट्रीय और सामाजिक सरोकारों के प्रति कवि की जागरूकता । दिनकर और अंचल के काव्य

को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चन का परवर्ती काव्य इन सरोकारों से क्रमश: जुड़ता जाता है और मात्र व्यक्तिगत रागों संवेगों की कुहेलिका से वे क्रमश: उबरते हैं जैसा कि उन्होंने अपने काव्यग्रन्थ 'हलाहल' और 'दो चट्टानों' की कविताओं में व्यक्त किया है। मेरे विचार से किसी भी कवि में यह रूपांतरण और भाव विचार परिवर्तन, क्रमश: परिवर्तित कालबोध का ही परिणाम है जो हमें 'निराला' में भी प्राप्त होता है।

इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में स्वच्छंदवादी काव्य धारा में प्राप्त दिक् काल बोध के विविध संदर्भों और आयामों का विवेचन अपेक्षित है जिसके द्वारा हम यह जान सकेंगे कि इस धारा में दिक्काल संदर्भ को किस रूप में ग्रहण किया गया है और साथ ही, यह भी स्पष्ट होगा कि कवि की रचना दृष्टि में दिक् और काल में से किसकी रचनात्मक अर्थवत्ता अधिक है? सबसे पहले मैं काल के स्वतंत्र रूप को लूंगा जो कवि द्वारा भिन्न अनुभव बिम्बों और रूपाकारों के द्वारा व्यक्त हुआ है।

काल का स्वतंत्र रूप

स्वच्छंदवादी काव्य में काल प्रत्यय को अक्सर ऐसे अनुभव बिम्बों के द्वारा संकेतित किया गया है जो काल और गति, काल और क्षण, काल और स्मृति तथा काल और इतिहास के अन्त:सम्बन्धों को न्यूनाधिक रचनात्मक संदर्भ प्रदान करता है। ये सभी सम्बन्ध स्वच्छंद भाव-संवेगों के तहत मुखर हुए हैं जिनमें 'विचार' की अन्तर्धारा सारी संरचना को 'तरल' एवं 'प्रवाहमय' बना देती है। इसका कारण है गीत की लय प्रधान व्यापकता जो काल को 'लयात्मक' एवं संवेगात्मक रूपों में संकेतित करती है। यही कारण है कि छायावाद की अपेक्षा यहां पर काल का 'तरल' रूप अधिक स्पष्ट है, वह कभी 'ओज' के आवरण में तो कभी 'राग' के आवरण में व्यक्त होता है। काल की प्रकृति और उसका स्वभाव 'गति' है जो 'प्रलय' (दु:ख) और 'निर्माण' (सुख) के चक्र को व्यक्त करता है। इस तथ्य को बच्चन एक सहज रागमय भावभंगिमा में व्यक्त करते हैं जो मानवीय संदर्भ में दुख और सुख के चक्र को भी प्रकट करते हैं—

> 'नाश के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख
> प्रलय की निस्तब्धता में सृष्टि का नव गान फिर-फिर,
> नीड़ का निर्माण फिर-फिर, स्नेह का आह्वान फिर-फिर।।
>
> (प्रणय पत्रिका)

व्यक्तिगत राग-सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में नरेन्द्र शर्मा ने कालावधि और गति को सापेक्ष मानते हुए, उन्हें रूपकात्मक अभिव्यक्ति दी है—

> मैं कालावधि के पंख लगा
> गति के रथ पर आरूढ़ सदा
> चेरी हूं जिसकी उसकी भी
> छाया छू आती यदा कदा। (अग्निशस्य)

उपर्युक्त उदाहरणों में काल और गति के आपसी रिश्ते को रागात्मक रूप में

व्यक्त किया गया है, यही स्थिति कमोवेश रूप में काल और 'क्षण' के आपसी सम्बन्ध को सामने रखती है । यही कारण है कि बच्चन को ये काल के 'रजकण' ध्रुव सत्य से लगते हैं क्योंकि ये ही क्षण उसे प्रदत्त हैं जो कवि के लिए आनंद के स्रोत हैं [आरंभिक रचनाएं, बच्चन] । दूसरी ओर दिनकर की ओजयुक्त मापिक संरचना में 'क्षण' काल के 'विश्वस्त श्रवण' है—

> जैसे रवि के रश्मिदूत, बिखरी किरणों के कण है
> काल पुरुष के उसी भांति ये क्षण विश्वस्त श्रवण है ।
> (कोयला और कवित्व)

दिनकर के काव्य में इतिहास और काल के सम्बन्ध को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि इतिहास एक मृतक चारण है जिसकी ओर लोग सिंहासन छोड़कर आते ही रहते हैं– यह भी काल की भयानक विलयकारी शक्ति है क्योंकि इतिहास का क्रम काल के दीर्घ आयाम में गतिशील रहता है । 'इतिहास के आंसू' में दिनकर ने काल के अतीत खण्ड को, जो अब स्मृति में रह गया है, उसे ही इतिहास माना है क्योंकि पद्यनाटिका 'मगध की महिमा' में स्वयं इतिहास कहता है 'मैं चारण हूं मृतक विश्व का. सब इतिहास मुझे कहते हैं' '[इतिहास के आंसू]' इतिहासों की यह अनुक्रम गति 'अंचल' के अनुसार 'युगों' को चीरती हुई अविरल गति से चली जा रही है और 'स्मृति' की क्रमागत लहरें उस गति को पकड़ने के लिए प्रयत्नशील है :–

> 'चीर युगों की अविरलता को
> इतिहासों की अनुक्रम गति को,
> चली आ रही आज, लहर पर लहर याद की ।' (विराम चिन्ह)

इससे कुछ भिन्न स्थिति बच्चन की है जो उसी विशेष क्षण के लिए रोता है जिसमें वह पूरा नहीं समाता है [मैं उसी क्षण के लिए रोता, कि जिसमें मैं नहीं पूरा समाता–प्रणय पत्रिका] यहां पर दिए गए 'क्षण' को पूरी तरह से जीने की आकांक्षा है । इसी से बच्चन का यह मानना है कि जिस 'क्षण' को याद में भी जिया नहीं जा सकता है, वह क्षण, असल में अपनी परिपूर्णता में 'स्थिर' हो गया है—

> जिस क्षण को
> जिया जा सकता नहीं फिर, याद में भी
> क्यों कि वह परिपूर्णता में थम गया है । (चार खेमे : चौसठ खूंटे)

सत्य में, बच्चन काव्य में इस 'वर्तमान' के प्रदत्त 'क्षण' का और साथ ही अतीत की स्मृतियों का एक अपना विशेष स्थान है । यदि गहराई से देखा जाए तो जागतिक दिक्काल के संदर्भ में बच्चन के लिए दो सत्य है, एक 'हाला' [मधु] और दूसरे 'हलाहल' जो विलोम होते हुए भी अन्योन्याश्रित हैं । बच्चन की कविता में ये दोनों 'शब्द' प्रतीक हैं जो अपनी अर्थभंगिमा के कारण पारम्परिक अर्थ के साथ उसमें नए अर्थतत्वों का संकेत भी करते हैं । बच्चन की 'मधु' से 'हलाहल' की यात्रा एक तरह से उनके जीवन के परिवर्तित काल बोध की यात्रा है जो यथार्थ के कटु रूपों का क्रमिक

साक्षात्कार है। बच्चन का यह जागतिक काल बोध यहीं तक सीमित नहीं रहता है, वरन् वे काल मापक यंत्र 'घड़ी' का भी जिक्र करते हैं जो आदिकालीन सभ्यताओं में 'बालुका घड़ी' के नाम से जानी जाती थीजो अपने तरीके से काल का 'मापन' करती थी। बच्चन की ये पंक्तियां इस तथ्य को एक सहज रूप में व्यक्त करती है—

काल मापक यंत्रों के बीच
बालुका के किनकों की माल
मध्य छिद्र से गिर दिनरात,
व्यक्त करती घड़ियों की चाल। (हलाहल)

आधुनिक हिन्दी कविता के दीर्घ विस्तार में बच्चन ही कदाचित एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने आदिम काल मापक यंत्र 'बालुका घड़ी' का संकेत इस प्रकार से किया है जो रचनात्मक संदर्भ भी प्राप्त कर सका है। इससे कवि की उस 'दृष्टि' का भी संकेत प्राप्त होता है जो अध्ययन एवं ज्ञान को किस प्रकार रचनात्मक संदर्भ प्रदान करता है। यही बात उनकी प्रसिद्ध लम्बी कविता 'दो चट्टानों' के बारे में भी सत्य है।

त्रिकाल धारा

काल के उपर्युक्त विविध रचनात्मक संदर्भों में यदा कदा काल के भूत और वर्तमान खण्डों का संकेत प्राप्त होता है जो मूलतः काल के स्वायत्त रूप को ही व्यंजित करते हैं। इस खण्ड के अन्तर्गत त्रिकाल [अतीत, वर्तमान और भविष्य] के उन रूपों का विवेचन अपेक्षित है जो काल की निरन्तरता में उनके सापेक्ष रूप को उद्घाटित करते हैं। तात्विक एवं वैयक्तिक दोनों स्तरों पर त्रिकाल का रूप प्राप्त होता है। जहां तक त्रिकाल के तात्विक रूप का प्रश्न है, नरेन्द्र शर्मा ने सृष्टि की अनंत्वा के संदर्भ में त्रिकाल के गतिवान रूप को इस प्रकार व्यक्त किया है—

हे अनंत दल, विकासपद्म, पद्मनाम का
सृष्टि नाशवान है न, त्रिकाल वर्धमान (अग्निशस्य)

यहां पर इस तथ्य को ध्यान में रखना जरूरी है कि सृष्टि इसलिए 'नाशवान' नहीं है कि वह त्रिकाल की गत्यात्मक प्रक्रिया से अनुशासित है। त्रिकाल की यह गत्यात्मकता, काल के एक ऐसे रूप को भी व्यक्त करती है जो अतीत और वर्तमान विन्दु की पश्चगामी एवं अग्रगामी प्रवृति की ओर संकेत करती है– यही इतिहास का क्रम है जो मानव सापेक्ष है। दिनकर की यह उक्ति लें—

चले गए जो युग लेकर उत्कर्ष
पूछने कुशल नहीं आएंगें
सामने बाकी है जो वर्ष
छोड़कर तुझे निकल पाएंगें॥ (कोयला और कवित्व)

दूसरी ओर, दिनकर का मानना है कि 'वर्तमान की चित्रपटी पर, भूतकाल संभाव्य बने' [इतिहास के आंसू]– इसमें अतीत का महत्व वर्तमान की सापेक्षता में है और दूसरी ओर उसके संभावित भविष्य की भूमिका भी दृष्टिगत होती है।

इसके विपरीत बच्चन की स्थिति कुछ भिन्न है क्योंकि वे त्रिकाल धारा को वैयक्तिक एवं रचनात्मक संदर्भ में ग्रहण करते हैं जिसमें राग-संवेदन का पुट अपेक्षाकृत गहरा है। बच्चन के लिए वर्तमान प्रतीति बिन्दु लगातार पीछे और आगे की ओर खिसक रहा है जिसके कारण 'मैं' भी लगातार गतिवान हूं—

मैं जहां खड़ा था कल
उस थल पर आज नहीं
कल इस जगह फिर पाना
मुझको मुश्किल है। (मिलन यामिनी)

बच्चन के लिए, जहां तक सृजन-कर्म का प्रश्न है, क्रूर काल के डंक से भी उसे भय नहीं है क्योंकि उसके पदों ने त्रिकाल को मापित कर लिया है। यहां पर कवि त्रिकाल के आगे नतशिर न होकर उसे अर्थ देने वाला व्यक्ति है, मापने वाला व्यक्ति है—

कवि के दृग कोरों के नीचे, बाल भविष्य हंसा करता है
वर्तमान के प्रौढ़ स्वरों से, होता कवि का कंठ निनादित
तीन काल पर मापित मेरे, क्रूर समय का डंक मुझे क्या ?
आज गीत में अंक लगाए, भू मुझको, पर्यंक मुझे क्या ?
(प्रणय पत्रिका)

यदि गहराई से देखा जाए तो बच्चन की सृजनात्मकता में काल बोध मात्र वैयक्तिक संदर्भ को ही नहीं वरन् उसके व्यापक अर्थ स्तरों को भी खोलता है। यह सब कार्य भाषिक स्तर पर अत्यंत सहज ढंग से किया गया है। विचार और भाव संवेदना का जितना तरल रूप हमें बच्चन के काव्य में प्राप्त होता है, वह स्वच्छंदवादी काव्य धारा का ही नहीं, वरन् अन्य काव्यधाराओं की सापेक्षता में भी बेजोड़ और अर्थवान है।

काल-शक्ति नियति एवं रहस्य

स्वच्छंदवादी काव्य धारा में काल का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष उसका 'शक्ति' रूप है जो मानव नियति और भाग्य को परिचालित करता है। काल का यह शक्ति रूप अनेक वाचक शब्दों द्वारा संकेतित होता है यथा नियति, प्रारब्ध, यम (मृत्यु) आदि जो परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से काल की शक्ति एवं गति के भिन्न रूपाकार हैं। यह सही है कि काल एक शक्ति है, फिर भी मानव जीवन उससे संघर्ष कर अपनी अस्मिता को बनाए रखता है। यही कारण है कि काल के दंश के बावजूद जीवन की गति कभी रुकती नहीं है : यह काल और जीवन का सापेक्ष सम्बन्ध है। दिनकर के काव्य में जीवन का यह शाश्वत प्रवाह एक नित्य प्रवाह है जिस तरह काल का (मृत्यु) प्रवाह (रसवंती)। दूसरी ओर, बच्चन की प्रसिद्ध कविता 'हनुमान और सिसीफस' में सिसीफस अपने पिता की मृत्यु से उत्पन्न मनस्ताप को व्यक्त करते हुए काल रूपी मृत्यु के व्यंग्य को रखता है जिसके आने का कोई समय नहीं है यथा—

मृत्यु सब पर व्यंग्य करती मुस्कराती.......
है नहीं कोई समय, उसके न आने का समय (दो चट्टानें)

यही नहीं, नरेन्द्र शर्मा के लिए समस्त सृष्टि 'यम की अज्ञात दया पर' निर्भर है (अग्नि-शस्य) और यही कारण है कि समय सत्य है, इष्ट है और हम मात्र उसके 'प्रयोजन' (पलाशवन) हैं। इन उदाहरणों से काल शक्ति के निरपेक्ष रूप का संकेत प्राप्त होता है जो कभी भयंकर है, नियंता है और कभी है यम रूप।

इसके विपरीत इस काव्य में काल पर अधिकार करने की एक अदम्य आकांक्षा कवियों में है जो एक प्रकार से 'पौरुष काल' की अभिव्यक्ति है। दिनकर का राष्ट्रीय काव्य इसी 'पौरुष काल' की अभिव्यक्ति है जो भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हुआ है। दिनकर ने 'रसवंती' काव्य में [जो उनकी शुरू की रचना है] इस पौरुष-काल का आवाहन किया था जो क्रमशः आगे गति एवं अर्थ प्राप्त करता जाता है। 'चलूंगा निज बल हो निःशंक, नियति के सिर पर देकर पांव' [रसवंती] जैसी पंक्तियां आगे चलकर 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अपने सारे अर्थ गौरव के साथ प्रकट होती है जिसमें ओज और उत्साह की अन्तर्धारा व्याप्त है—

जब कुपित काल धीरता त्याग जलता है,
सौंदर्यबोध नयी आग बन जलता है,
अबंर पर अपनी विभा प्रवुद्ध करो रे
गरजे कृशानु तव कंचन शत्रु करो रे ॥ (परशुराम की प्रतीक्षा)

यहां पर कुपित काल ही मानव ऊर्जा और कर्म को प्रेरित करता है जो एक प्रकार से 'पौरुष काल' का सुंदर उदाहरण है। उसे बच्चन कुछ दूसरी प्रकार से महसूस करते हैं [वैयक्तिक राग संवेदन के संदर्भ में] कि समय मात्र बातें नहीं करता, वरन् हरेक की 'सख्त' परीक्षा लेता है। इस 'परीक्षा' को 'पौरुष काल' के द्वारा ही दिया जा सकता है—

'वक्त, बातों में नहीं आता
परीक्षा, सख्त लेता हर किसी की। (प्रणय पत्रिका)

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि इस काल का कवि जहां एक ओर काल या नियति के अधीन सारी सृष्टि को मानता है, वहीं दूसरी ओर वह काल से [मृत्यु] मुठभेड़ की स्थिति में भी आता है। यह काल से 'कन्फ्रन्टेशन' का सुन्दर विकास हमें दिनकर काव्य में प्राप्त होता है [राष्ट्रीय काव्य] और इसकी अनुगूंजें यदा कदा अंचल, नरेन्द्र शर्मा और बच्चन की रचनाओं में प्राप्त होती हैं।

इसी विवेचन के अन्तर्गत मैं उन स्थितियों को भी लेना चाहूंगा जो दिक्काल के उस रूप को व्यक्त करते हैं जो जिज्ञासा और रहस्य भावना को, ब्रह्मांड और विराटता के संदर्भ में व्यंजित करते हैं। ऐसे उदाहरण इस काव्य धारा में न्यून हैं, पर जो भी हैं, वे दिक्काल सापेक्षता को एक 'रहस्य' की ओर ले जाते हैं जिसमें तत्व चिंतन की रेखाएं प्राप्त होती हैं। दिनकर को जागतिक दिक्काल से परे भी ऐसी 'गहनता' का अनुभव होता है जिसके बारे में कवि मात्र प्रश्न चिह्न ही लगता है—

मान लिया तुम देश काल तक पहुंच गए हो
दोनों से परे गहनता का संसार कहां है ? (कोयला और कवित्व)

इससे भी रहस्यात्मक स्थिति बच्चन में प्राप्त होती है जो 'दो चट्टानें' कविता में सिसीफस प्रसंग के अन्तर्गत गोलक [जो सृष्टि का आदिअंड है] क्रमशः सूक्ष्म इकाई परमाणु तक विभाजित होकर अंततः ये अणु परमाणु शून्य में लय हो जाएंगे, और इस स्थिति में उनकी मुक्ति काल को क्षय करके ही होगी। यहां पर शून्य [दिक्] और काल के सापेक्ष रूप का संकेत प्राप्त होता है जो अंततः काल के क्षरित रूप को व्यक्त करता है। काल का यह क्षरित रूप अणु-परमाणु सापेक्ष है।

जब तलक गोलक, न बनता गेंद, गोली
और छोटी और छोटी, अणु तथा परमाणु
जो हो शून्य में लय
और
अस्तित्व उनका मुक्त होगा
काल कर क्षय। (दो चट्टानें)

दिनकर को काल की 'निस्सीमता की सांस' शून्य के 'पास' प्रतीत होती है जो हर आकार में अन्तर्निहित है, उसमें 'प्रच्छन्न' है। यह प्रच्छन्न रूप क्या है– एक 'आवाज' का रूप ही है जो 'शब्द ध्वनि' का प्रतीक है जिसे कवि ने तात्विक भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है—

शून्य का जो उत्स, उसके पास है वह
काल की निस्सीमता को सांस है वह
है पची हर चीज के आकार में
मूक है, प्रच्छन्न है सबसे बड़ी आवाज (नील कुसुम)

इसी प्रकार की तात्विक भूमि नरेन्द्र शर्मा में भी प्राप्त होती है जिसमें दिग् दिगंत [दिक्] 'वेदी' है और महाकाल उसकी ज्वाला। इस दिक् काल की महावेदी पर मानव इतिहास का 'होम' हो रहा है जिसमें आहुति हो रही है सृजन और विचार की। यह एक 'यज्ञ' है जो दिक्काल की 'वेदी' पर हो रहा है। नरेन्द्र शर्मा का यह 'रूपक' एक सौंदर्य दृष्टि क वाहक है क्योंकि विराटता, यज्ञ और मानव इतिहास का सापेक्ष रूप एक विराट सौंदर्य की सृष्टि करता है। इस यज्ञ में सृजन-विचार की आहुति एक ऐसा सत्य है जो मानव इतिहास और दिक्काल की 'गति' को बनाए रखता है—

दिक् दिगंत की वेदी जिसमें
महाकाल की चिर ज्वाला
मानव का इतिहास होम है
आहुति कृति विचार माला॥ (अग्निशस्य)

दिक् प्रतीति के आयाम

स्वच्छंदवादी काव्यधारा में प्राप्त काल के विविध रचनात्मक आयामों के विवेचन के बाद दिक् प्रतीति के वैयक्तिक, सम्बंधगत और स्वतंत्र संघर्षमूलक रूपों का विवेचन अपेक्षित है। क्योंकि इस काल के कवियों ने काल प्रतीति के साथ दिक् प्रतीति को किसी

न किसी रूप में अपनी विचार-संवेदना का वाहक बनाया है। उस दृष्टि से दिक् के उस रूप को सबसे पहले लेना जरूरी है जो सीधे मानव और उसके संघर्ष से सम्बन्धित है। दिनकर को लगता है कि मानव के जीवन की परिधि अब भी सीमाहीन दीखती है क्योंकि मानव की अपनी सीमाएं है जहां तक अनंत के साक्षात्कार का प्रश्न है। दूसरी ओर यही मानव गति की संभावनाएं हैं जो सीमा से परे जाती है—

'मुझ मानव को क्षितिज वृत्त से
घेरे रही नीलिमा गगन की
तब भी सीमा–हीन दीखती
आज परिधि मेरे जीवन की। (रसवंती)

यही नहीं दिनकर के लिए युवा शक्ति एक ऐसी शक्ति है जो खगोल, भविष्य, पृथ्वी से देवलोक तक अपने [मनुष्य] प्रताप के रहस्य को खोलती है। परशुराम की प्रतीक्षा' दिनकर के उपर्युक्त उदाहरणों में गगन सीमाहीन, क्षितिज, खगोल, भू से देवलोक तक आदि रूपाकार दिक् व्याप्ति के सूचक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि दिक् [काल को भी] की व्याप्ति को भिन्न भाषिक बिम्बों और प्रतीकों [रूपाकारों] के द्वारा पकड़ने का प्रयत्न करता है। दिनकर की ओजयुक्त वाणी में इन रूपाकारों का अपना महत्व है। यही स्थिति हमें अंचल में भी कभी-कभी प्राप्त होती है जो दिक् व्याप्ति के वाहक शब्दों का प्रयोग इसी प्रकार करते हैं यथा 'उस पार', दिगंतर और गति शब्द–

उस पार दिगंतर से आयी संकल्प भरी गति की वाणी।
इंगित पर लहराते जिसके तूफान;बवंडर अभिमानी [विराम चिह्न]

यदि गहराई से देखा जाए तो दिनकर और अचंल का काव्य [ओज प्रधान–राष्ट्रीय रूप] दिक् की प्रतीति को अपने 'परिवेश' से जोड़ता है और साथ ही 'समय' की संघर्षशील भूमिका को भी प्रकट करता है। दिनकर का राष्ट्रीय काव्य दिक् और काल को अक्सर इसी रूप में लेता है।

इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में दिक् का सम्बंधगत रूप भी प्राप्त होता है जो राग–संवेदन की भावभूमि को संकेतित करता है। यह सम्बन्ध अधिकतर 'मैं-तुम' सर्वनामों के द्वारा प्राप्त होता है जो जागतिक (दिक् काल) के साथ-साथ कभी-कभी हल्के रहस्य को भी व्यंजित करता है। दिनकर में यदा–कदा यह प्रवृत्ति प्राप्त होती है जो एक ओर अपने को 'उसकी' सापेक्षता में 'गमन' के विस्तार से परे तक की अनुभूति करता है, तो दूसरी ओर मन के अनंत आकाश में उसकी परोक्षानुभूति। यहां पर 'राग–प्रेम' का तत्व मुख्य है जो हल्के रहस्यभाव को लिए हुए है, पर 'रहस्यवाद' को नहीं जो हमें छायावादी काव्य में मिलता है—

मैं तुम्हारी ओर अपलक
देखता खोता गया
भूमि से ऊपर गगन में
स्यात् उसके भी परे
मन के अनंताकाश में। (कोयल और कवित्व)

एक अन्य मनःस्थिति नरेन्द्र शर्मा की है जो 'मैं–तुम' के मध्य एक 'तम रेखा' का अनुभव करते हैं जो 'ज्योतिशर' से उनके मध्य इस अंधकार को 'भेद' सके। (अग्निशस्य) बच्चन के लिए भी यही स्थिति है जब वे अपने और उसके बीच 'विष की लकीर' का अनुभव करते हैं—

इधर मैं हूं, वह है उस पार
बीच में बिष की एक लकीर। (हलाहल)

एक तथ्य यहां पर यह प्रकट होता है कि दोनों कवियों में 'तम' और 'विष' का व्यवधान है जो दिकीय सम्बन्ध को (मैं तुम द्वारा) आधुनिक विडम्बना का संस्पर्श दे देता है। यहां यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि बच्चन के मधु काव्य का दिकीय बोध (काल भी) 'मधु' को सुख मिलन और उल्लास के रूप में स्वीकार करता है जो कवि के किशोर मन की मनोवैज्ञानिक स्थिति का सूचक है जबकि 'हलाहल' आदि में 'विष' जीवन के उस कटु एवं संघर्षशील जीवन का अनुभव करता है जिसे कवि जीवन के एक महत्वपूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार करता है। बच्चन के काव्य में यह 'मधु' और 'हलाहल' का बोध उनके परिवर्तित दिक् काल बोध का ही परिणाम है।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह स्पष्ट होता है कि स्वच्छंदवादी काव्य धारा में दिक् काल बोध के विविध संदर्भ अधिकतर व्यक्तिगत राग संवेदन से संस्पर्शित है जिसमें प्रेम और अनुराग की जागतिक प्रवृत्ति अधिक है। एक अन्य रूप वह है जिसमें दिक् काल का पौरुष और रेखीय चक्राकार रूप दृष्टिगत होता है जो राग तत्व के साथ चिंतन एवं विचार पक्ष को अधिक उजागर करता है। गीत की भावभूमि से अधिकतर कवि का राग तत्व अधिक तरल है, उसमें एक ऐसी सहज स्वच्छंद वृत्ति में दर्शन होते हैं जो दिक् काल सर्जना को एक सहज संवेगजन्य स्वच्छंद स्वरूप प्रदान कर देते हैं।

□

हिन्दी-उर्दू का सवाल तथा पाकिस्तानी राजदूत से मुलाकात

प्रोफेसर डॉ० महावीर सरन जैन

रोमानिया की राजधानी 'बुकारेस्त' (रोमानियन भाषा में उच्चारण 'बुकुरेश्ति'; भारत में अंग्रेजी के अनुकरण पर 'बुखारेस्ट') में अक्टूबर १९८५ ई. में हमने पाकिस्तानी राजदूतावास के प्रभारी राजदूत (चार्ज़ द अफ़ेअर्स) मिस्टर एस. वाई. नक्वी को बिदाई दी। ये प्रथम सचिव स्तर के राजनयिक थे। इनके बाद रोमानिया में पाकिस्तान के पूर्ण कार्याधिकारी राजदूत हिज़ हाइनेस मिस्टर गुलाम रब्बानी पधारे। इनके आने के थोड़े दिनों बाद ही बुकारेस्त में 'इण्डो–रोमानियन ज्वाइंट कमीशन' की बैठक हुई जिसमें भाग लेने के लिए भारत से शासकीय अधिकारीगण आए। इस उपलक्ष्य में भारत के तत्कालीन राजदूत श्री हरदेव भल्ला ने अपने आवास पर स्वागत समारोह का आयोजन किया तथा इसमें उन्होंने पाकिस्तानी राजदूत को भी आमंत्रित किया। भल्ला साहब ने मेरा एवं रब्बानी साहब का परस्पर परिचय कराया। रब्बानी साहब ने मुझसे कहा—

'प्रोफेसर साहब ! आप बुकारेस्ट यूनिवर्सिटी में हिन्दी के प्रोफेसर हैं। हम भी पाकिस्तान से उर्दू के प्रोफेसर को यहां बुलाना चाहते हैं। इस बारे में हमें तरकीब बताइएगा।'

मैंने उत्तर दिया :

'आप उर्दू के किसी प्रोफेसर को बुलाना चाहते हैं– यह मेरे लिए खुशी की बात है मगर जब तक वे नहीं आते तब तक आप मुझे ही उर्दू का भी प्रोफेसर मान सकते हैं क्योंकि मैं हिन्दी एवं उर्दू को एक ही जबान मानता हूं।'

मेरी इस बात को सुनकर वे चौंक पड़े और उन्होंने एकदम प्रतिवाद किया :

'ये आप क्या कह रहे हैं ? दोनों ज़बानें तो जुदा–जुदा हैं।'

मैंने कहा :

'जबाने जुदा-जुदा नहीं हैं, हिन्दी–उर्दू एक ही जबान की दो स्टाइलें हैं।'

उन्होंने कहा :

'हरगिज नहीं, हम यह नहीं मानते ।'

मेरे मन में यह भाव आया कि राजनयिक वातावरण की औपचारिकताओं में मेरे द्वारा विघ्न बाधा नहीं पड़नी चाहिए। मैंने अत्यंत विनम्र स्वरों में उनसे निवेदन किया—

'बेहतर हो, हम लोग अलग बैठकर आराम से इस मुद्दे पर बातचीत करें।'

हिन्दी मुसलमानों का दिया हुआ लफ्ज :

मेरा यह प्रस्ताव उन्हें पसंद आया। भीड़-भाड़ से हटकर हम दोनों एक सोफे पर बैठ गए। मैंने वार्ता आरम्भ की :

'हिन्दी मुसलमानों का दिया हुआ लफ्ज है'

इसको सुनकर उन्होंने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया जैसे मैं उनको बनाने का प्रयास कर रहा हूँ। इसके पहले कि वे कुछ कह पाते मैंने गम्भीर होकर कहा :

'देखिए आप एक देश के एम्बेसेडर साहब हैं, हमारे मेहमान हैं। मगर जरा आप यह भी सोचिए कि मैं एक प्रोफेसर हूं। मैं एकेडेमिक बात कह रहा हूं। किसी जजबात में बहकर कोई बात नहीं कह रहा हूं। मेरा इस मुद्दे पर जो नजरिया है, मैंने जो पढ़ा लिखा है सोचा है, उसे आपके सामने रखने की कोशिश कर रहा हूं।'

ध्यान से मेरी बात सुनने के लिए वे आराम से बैठ गए। मैंने उन्हें विस्तार-पूर्वक बतलाया कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में भी 'स' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स' को 'ह' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहां 'अहुर' कहा जाता था। अफगानिस्तान के बाद सिन्धु नदी के इस पार हिन्दुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फारसी साहित्य में 'हिन्द' 'हिन्दुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहां की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को 'एडजेक्टिव' के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है जिसके मतलब है 'हिन्द का'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इंदिके', 'इंदिका', लैटिन में 'इंदिया' तथा अंग्रेजी में 'इंडिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में हिन्दी में बोली जाने वाली जबानों के लिए 'जबान-ए-हिन्दी' लफ्ज का प्रयोग हुआ है। भारत आने के बाद मुसलमानों ने 'जबान-ए-हिन्दी' 'हिन्दी जुबान' अथवा 'हिन्दी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषाओं के अर्थ में किया। भारत के गैर मुस्लिम लोग तो इन बोली जाने वाली भाषाओं को 'भाषा' अथवा 'भाखा' नाम से पुकारते थे, हिन्दी नाम से नहीं। इसी कारण मैंने यह कहा था कि हिन्दी मुसलमानों का दिया हुआ लफ्ज है।

जिस समय मुसलमान यहां आए उस समय भारत के इस हिस्से में साहित्य रचना शौरसेनी अपभ्रंश में हो रही थी। बाद में डिंगल साहित्य रचा गया। मुगलों के काल में अवधी तथा ब्रज में साहित्य लिखा गया। आधुनिक हिन्दी साहित्य की जो जबान है, उस जबान 'हिन्दवी' को आधार बनाकर रचना करने वालों में सबसे पहले रचनाकार का नाम अमीर खुसरो है जिनका समय १२५३ ई. से १३२५ ई. के बीच माना जाता है। ये फारसी के भी विद्वान थे तथा इन्होंने फारसी में भी रचनायें लिखीं मगर 'हिन्दवी'

में रचना करने वाले ये प्रथम रचनाकार थे। यदि आपको यकीन न हो तो मैं इनकी अनेक पहेलियां सुना सकता हूं।

रब्बानी साहब कुछ नहीं बोले। मैंने खुसरो की दो रचनाएं सुनाईं—

(१) क्या जानूं वह कैसा है। जैसा देखा वैसा है।

(२) एक नार ने अचरज किया। सांप मारि पिंजड़े में दिया।

रब्बानी साहब ने कहा कि इन्हें तो उर्दू भी माना जा सकता है। मैंने कहा कि नाम में क्या रखा है आप चाहें– हिन्दी कहें, हिन्दवी कहें, उर्दू कहें– एक ही तो बात है। मगर अमीर खुसरो ने इसे 'हिन्दवी' कहा है। एक जगह उन्होंने लिखा है जिसका भाव है कि मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूं, हिन्दवी में जवाब देता हूं। (बाद में मैंने उनकी मूल पंक्ति ढूंढ निकाली जो इस प्रकार है : तुर्क हिन्दुस्तानियम हिन्दवी गोयम जवाब)।

उर्दू

इसके बाद हमारी बातचीत 'उर्दू' के मतलब तथा उसके जन्म की तरफ मुड़ी। उर्दू' मूलतः तुर्की लफ्ज है जिसके मायने होते हैं : 'छावनी', 'लश्कर'। 'मुअल्ला' अरबी लफ्ज है जिसके मायने होते हैं : 'सबसे बढ़िया'। 'शाही पड़ाव', 'शाही छावनी' 'शाही लश्कर' के लिए पहले 'उर्दू-ए-मुअल्ला' शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ। बाद में बादशाही सेना के पड़ावों, छावनियों तथा बाजारों (लश्कर बाजारों) में 'हिन्दवी' अथवा 'देहलवी' का जो भाषा–रूप बोला जाता था उसे 'जबाने-उर्दू-ए-मुअल्ला' कहा जाने लगा। बाद को जब यह जबान फैली तो 'मुअल्ला' शब्द हट गया तथा 'जबाने उर्दू' रह गया। 'जबाने उर्दू' के मतलब— 'उर्दू की जबान' या अंग्रेजी में 'लैंग्वेज ऑफ उर्दू'। बाद को इसी को संक्षेप में 'उर्दू' कहा जाने लगा।

उर्दू में साहित्य रचना बाद में आरम्भ हुई। उर्दू साहित्य के इतिहासकार वली औरंगाबादी [रचनाकाल १७०० ई. के बाद] को उर्दू का प्रथम शायर मानते हैं। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी का इतिहास लिखने वाले इनको खड़ी बोली हिन्दी की 'दक्खिनी हिन्दी' का एक कवि मानते हैं। शाहजहां ने अपनी राजधानी आगरा के स्थान पर दिल्ली बनाई और अपने नाम पर सन् १६४८ ई. में 'शाहजहांनाबाद' आबाद किया, लाल किला बनाया। ऐसा मालूम होता है कि इसके बाद से राजदरबारों में फारसी के साथ-साथ 'जबाने–उर्दू-ए-मुअल्ला' में भी रचनाएँ होने लगीं। यह प्रमाण मिलता है कि शाहजहां के समय में पंडित चन्द्रभान बिरहमन ने बाजारों में बोली जाने वाली जनभाषा को आधार बनाकर फारसी शैली में रचनाएँ कीं। ये फारसी लिपि जानते थे। अपनी रचनाओं को इन्होंने फारसी लिपि में रखा। धीरे-धीरे दिल्ली के शाहजहांनाबाद की उर्दू-ए-मुअल्ला का महत्व बढ़ने लगा।

उर्दू के शायर मीर साहब (१७१२–१८१० ई.) ने एक जगह लिखा है :

"दर फ़ने रेखता कि शेरस्त बतौर शेर फारस ब जबाने उर्दू-ए-मोअल्ला शाहजहांनाबाद देहली"।

जबान तथा स्क्रिप्ट

रब्बानी साहब ने कहा कि कम से कम 'स्क्रिप्ट' का अन्तर तो आप भी मानते हैं। मैंने कहा कि स्क्रिप्ट (लिपि) का भेद रहा है क्योंकि बादशाही दरबारों की भाषा फारसी थी तथा लिपि भी फारसी थी। उन्होंने अपनी रचनाओं को जनता तक पहुंचाने के लिए भाषा तो जनता की अपनाली मगर उन्हें फारसी लिपि में लिखते रहे।

मगर 'जबान' (भाषा) अलग चीज है, 'स्क्रिप्ट' (लिपि) अलग चीज। जबान है जो बोली जाती है, लिपि है जिसमें उसे लिखा जाता है। एक जबान को एक से अधिक लिपियों में लिखा जा सकता है तथा एक ही स्क्रिप्ट (लिपि) में एक से अधिक जबाने लिखी जा सकती हैं। रोमन लिपि में यूरोप की कितनी भाषाएँ लिखी जाती हैं। रोमन स्क्रिप्ट तो एक ही है उसी एक स्क्रिप्ट में कितनी भाषाएं लिखी जाती हैं। हिन्दी के बहुत से कवियों ने अपनी रचनाएँ फारसी लिपि में लिखी मगर उनकी रचनाएँ फारसी भाषा की नहीं, हिन्दी की हैं। सन् १९२८ ई. में जब तुर्की ने अरबी के स्थान पर रोमन स्क्रिप्ट में लिखना स्वीकार किया तो इससे उनकी जबान नहीं बदल गई, तब भी वे उसी प्रकार बोलते रहे जैसे पहले बोला करते थे।

इसके बाद मैंने यह स्पष्ट किया कि १८वीं सदी के अन्त तक 'हिन्दी' 'हिन्दवी' 'उर्दू' 'रेखता' 'देहलवी' 'हिन्दुस्तानी' आदि शब्दों का 'सिनानिम' (समानार्थी) रूप में प्रयोग होता रहा। मैं आपको उदाहरण दे सकता हूं जिससे यह बात साफ हो जाएगी। नासिख, सौदा, मीर तथा आतिश ने अपने शेरों को एकाधिक बार 'हिन्दी शेर' कहा है तथा गालिब ने अपने खतों में 'उर्दू' 'हिन्दी' 'रेखता' का कई जगहों पर सिनानिम (समानार्थी) रूप में प्रयोग किया है।

अंग्रेज तथा हिन्दी और उर्दू का अलगाव :

रब्बानी साहब ने जानना चाहा कि जो कुछ मैंने कहा है वह यदि सही है तो फिर हिन्दी एवं उर्दू को अलग-अलग जुबान क्यों माना जाने लगा।

इसके लिए मैंने अंग्रेजों की हिन्दुओं एवं मुसलमानों में फूट डालो और राज करो वाली नीति का ब्यौरा दिया तथा इस बारे में उन्होंने अपनी रजामंदी प्रकट की। इसके बाद काम आसान हो गया। मैंने कहा जैसे पालिटिक्स की अलग तरह की जुबान होती है उसी प्रकार जबान की पालिटिक्स भी होती है जिसे अंग्रेजी में Glottopolitics कहते हैं। अंग्रेजों ने कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। इसका उद्देश्य प्रतिपादित किया गया कि भारत में आने वाले अंग्रेज कर्मचारियों को देशी भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस कॉलेज की स्थापना की गई है। उद्देश्य तो बहुत अच्छा रखा गया। मेरा सवाल है कि १९ वीं सदी में ईसाई मिशनरियों ने उत्तर भारत में ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बाइबिल के अनुवादों में जिस सरल एवं जनसुलभ भाषा-रूप को अपनाया उस भाषा-रूप में फोर्ट विलियम कॉलेज में अंग्रेज कर्मचारियों को सिखाने के लिए भाषा पाठ्य सामग्री का निर्माण क्यों नहीं किया गया। फोर्ट विलियम कालेज के डाइरेक्टर गिलक्राइस्ट ने लल्लूलाल को

'प्रमसागर' के लिखते समय 'यामनी (मुसलमानी) भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह ' की हिदायत क्यों दी। उन्होंने सदल मिश्र से यह क्यों ठहराया और उन्हें यह आज्ञा क्यों दी कि वे अध्यात्म रामायण की रचना ऐसी बोली में करें जिसमें अरबी-फारसी के शब्द न आने पावें। सबसे पहले गिलक्राइस्ट ने 'हिन्दी' तथा 'उर्दू' का भेद नहीं किया। सन् १८०४ ई. में उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' एवं 'खरी बोली' का अंतर बतलाते हुए कहा कि खरी बोली में किसी भी अरबी एवं फारसी शब्द का प्रयोग नहीं होता। जनता तो अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग अंग्रेजों के आने के पहले भी करती थी, उनके जमाने में भी करती थी और आज भी करती है। मगर गिलक्राइस्ट को तो भाषा के शुद्धिकरण की चिन्ता सिर पर सवार थी। वे खरी, शुद्ध, बिना मिलावट की, खालिस तथः विशुद्ध भाषा का निर्माण कराने में लग गये। १८०४ ई. में जो अंतर 'हिन्दुस्तानी' एवं 'खरी बोली' में प्रतिपादित किया गया था उसे सन् १८१२ ई. में 'हिन्दुस्तानी-रेख्ता' एवं 'हिन्दी' का भेद बतलाया गया। सन् १८१२ ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में केप्टन टेलर ने यह भेद बतलाते हुए कहा :

'मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र कर रहा हूं जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा हूं जिसकी अपनी लिपि है तथा जिसमें अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता।'

यह मैंने केवल इशारा किया है कि जनता के द्वारा जो भाषा बोली जाती थी, उसको अंग्रेजों ने दो भिन्न भाषाओं के रूप में प्रदर्शित करने के लिए षड़यंत्र रचा तथा एक को मुसलमानों की भाषा तथा दूसरी को हिन्दुओं की भाषा कहना आरंभ कर दिया। एक ही भाषा की दो स्टाइलें विकसित कराकर उनको भिन्न भाषाओं के रूप में प्रचारित करने तथा उन्हें भिन्न धर्मों के साथ जोड़ देने की गहरी साजिश इस मुल्क में रची गई। उर्दू को इस्लाम धर्म या मुसलमानों के साथ जोड़ दिया गया। ग्रियर्सन तक ने कहा कि 'उर्दू' इस्लाम के साथ दूर दूर तक फैली।

रब्बानी साहब ने बतलाया कि हम भी उर्दू को मुसलमानों की ही भाषा मानते हैं तथा पाकिस्तान में उर्दू को अपने वतन के तहजीब एवं पहचान की जबान माना जाता है।

भाषा एवं धर्म

मैंने सवाल उठाया कि क्या धर्म की कोई भाषा होती है। मैंने यह स्थापना की कि धर्म की भाषा नहीं होती, किसी धर्म के ग्रंथों की भाषा अवश्य होती है। इस दृष्टि से इस्लाम के धर्म ग्रंथ 'कुरान' की जबान अरबी है। मुसलमानों की कोई भाषा नहीं है, मुसलमानों के इस्लाम धर्म की 'कुरान' की भाषा अरबी है उसी प्रकार जैसे ईसाइयों की कोई भाषा नहीं है, ईसाइयों के धर्म ग्रंथ 'बाइबिल' [ओल्डटेस्टामेण्ट] की भाषा 'हिब्रू' है। अरबी एवं हिब्रू दोनों ही 'सामी' या सेमेटिक परिवार की भाषाएँ हैं। इस्लाम धर्म एवं ईसाई धर्म के अनुयायी संसार के अलग-अलग मुल्कों में रहते हैं तथा जहां रहते हैं वहां की भाषा बोलते हैं। भारत में केरल के मुसलमान मलयालम बोलते हैं, तमिलनाडु

के मुसलमान तमिल तथा पश्चिम बंगाल के मुसलमान बंगला। मैंने चुटकी ली और कहा कि बंगला देश में भी जो मुसलमान रहते हैं वे उर्दू का नहीं अपितु बंगला भाषा का प्रयोग करते हैं।

इस मुलाकात के बाद अनेक बार मेरी रब्बानी साहब से भेंट हुई। भाषा एवं जाति, भाषा एवं धर्म तथा भाषा एवं संस्कृति जैसे विषयों पर उनके साथ विचार विमर्श हुआ। रब्बानी साहब ने बतलाया कि इस्लाम की पैदाइश तो अरब में ही हुई। बाद को जब यह ईरान में फैला तो पर्शियन कल्चर का इस पर प्रभाव पड़ा। जब इस्लाम मजहब हिन्दुस्तान आया तो इस्लामिक कल्चर का प्रभाव हिन्दुस्तान पर पड़ा।

मैंने कहा: 'रब्बानी साहब जैसे मैं मजहब तथा भाषा [जबान] का संबंध नहीं मानता, वैसे ही जाति तथा भाषा, मजहब तथा जाति तथा मजहब एवं कल्चर का संबंध भी नहीं मानता। हमें इनका फर्क पहचानना चाहिए।'

जाति तथा भाषा

एक जाति के लोग प्रायः एक भाषा बोलते हैं इस कारण जाति और भाषा का संबंध मान लिया जाता है। अमेरिका में 'श्वेत' जाति अलग है, 'नीग्रो' जाति अलग है। वहां लाखों नीग्रो अंग्रेजी भाषा बोलते हैं। अंग्रेजी बोलने के कारण इन नीग्रों लोगों को 'श्वेत जाति' के लोग कोई नहीं मानता। इसी प्रकार जर्मनी में दो जातियाँ रहती हैं— (१) नार्डिक (२) आल्पाइन। मगर दोनों जातियाँ जर्मन भाषा बोलती हैं। आप रोमानिया को ही देख लीजिए। यहां रोमानियन, माग्यार (हंगेरियन), जर्मनी, जिप्सी, उक्रेनियन, सेर्बियन, यहूदी, तुर्क अनेक जातियों के लोग रहते हैं मगर सब रोमानियन भाषा बोलते हैं।

जाति तथा धर्म

सामान्य व्यवहार में हम धर्म को जाति से जोड़ने की भूल करते आए हैं: हिन्दू जाति, मुस्लिम जाति, ईसाई जाति। वैज्ञानिक दृष्टि से इस तरह की बातें भ्रामक हैं। अंग्रेज जाति, रूसी जाति [मग्यार जाति, चैक जाति-ये अलग-अलग जातियां हैं। ये सभी ईसाई धर्म को मानते हैं। भारत में एवं पाकिस्तान में भी 'ईसाई' रहते हैं। क्या इन्हें इंग्लैण्ड के ईसाईयों की अंग्रेज जाति का माना जा सकता है?

धर्म एवं संस्कृति

धर्म को संस्कृति के साथ जोड़ना भी ठीक नहीं हैं। हिन्दू संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, ईसाई संस्कृति, बौद्ध संस्कृति जैसे शब्दों का प्रयोग होता है मगर ये प्रयोग अवैज्ञानिक हैं। बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तिब्बत, लंका, जापान तीनों देशों में है। धर्म की दृष्टि से तीनों देश बौद्ध धर्म को मानते हैं। मगर तीनों देशों की भाषाएं अलग हैं, संस्कृतियां अलग हैं।

अंग्रेज लोगों ने हिन्दुस्तान पर शासन किया। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हिन्दुस्तान की भाषाओं पर पड़ा। यूरोपीय कल्चर ने हिन्दुस्तान की संस्कृति को प्रभावित किया। हम यह नहीं कहते कि ईसाई भाषा ने हमारी भाषाओं को प्रभावित किया या ईसाई कल्चर से हम प्रभावित हुए।

इण्डोनेशिया, इराक, ईरान तथा सूडान ये चारों देश इस्लाम धर्म को मानते हैं। धर्म की दृष्टि से ये चारों मुस्लिम देश हैं। मगर इनकी भाषाएं एवं संस्कृतियां अलग-अलग हैं।

इण्डोनेशिया में मलयपालोनेशियन या आस्ट्रोनेशियन परिवार की इण्डोनेशियन शाखा की भाषाएं बोली जाती हैं तथा यहां की संस्कृति जावा–सुमात्रा–बोर्नियो आदि द्वीपों की संस्कृति है।

इराक में सामी या सेमेटिक परिवार की अरबी तथा कुर्दिश भाषाएं बोली जाती हैं तथा ये 'मोसोपोटामिया कल्चर' के वंशधर हैं।

ईरान में इण्डो–यूरोपियन परिवार की 'इण्डो–ईरानियन' शाखा की फारसी (पर्शियन) भाषा बोली जाती है तथा इसकी ईरानी या पर्शियन कल्चर है। मैंने संदर्भ से यह भी बतलाना उचित समझा कि फारसी की प्राचीन भाषा का नाम 'अवेस्ता' था जिसमें जोरोआस्ट्रिन (अवेस्ता में 'ज़रथुस्त्र') के धर्म ग्रन्थ की रचना हुई थी।

सूडान में हम सब जानते हैं कि वहां अफ्रीका महाद्वीप की संस्कृति है तथा अफ्रीकन परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं।

हिन्दुस्तान एवं इस्लामी संस्कृति

रब्बानी साहब ने कहा कि उन्होंने अनेक किताबें पढ़ी हैं जिनमें हिन्दुस्तान की कल्चर पर इस्लामी कल्चर का असर साफ-साफ दिखाया गया है। उन्होंने डाक्टर ताराचंद की किताब 'इन्फ्लुयेन्सिस ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर' का नाम लिया। उन्होंने बतलाया कि प्रोफेसर हुमायूं कबीर ने भी 'अवर हेरिटेज' किताब में यही बात कही है। उन्होंने अन्य बहुत से विद्वानों के नाम तथा उनकी किताबों के नाम लिए जो मुझे इस समय याद नहीं हैं। मैंने कहा कि आपकी बात सही है। अंग्रेजों ने हमारे पूरे समाज को हिन्दू एवं मुसलमान दो भागों में बांटकर देखा तथा दिखाया। मैंने कहा इस बारे में दो बातें हैं—

किसी मजहब के असूलों का प्रभाव दूसरे मजहबों पर पड़ता है या पड़ सकता है या किसी देश या जाति के लोगों के सोचने के ढंग को भी प्रभावित कर सकता है मगर भाषाएँ भाषाओं से प्रभावित होती हैं, संस्कृतियाँ संस्कृतियों से प्रभावित होती हैं। हमारी भाषाओं पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव पड़ा, हमारी कल्चर 'यूरोपीय कल्चर' से प्रभावित हुई, न कि हमारी भाषाएँ एवं हमारी कल्चर 'ईसाई मजहब' से प्रभावित हुई।

हिन्दुस्तान में एक ही देश, एक ही जुबान तथा एक ही जाति के मुसलमान नहीं आए। सबसे पहले यहाँ अरब लोग आए। अरब सौदागर, फकीर, दरवेश सातवीं शताब्दी से आने आरंभ हो गए थे तथा आठवीं शताब्दी (७०० ई. के आरंभ) से अरब लोगों ने सिन्ध पर कब्जा कर लिया। इसके बाद तुर्की के तुर्क तथा अफगानिस्तान के पठान लोगों ने आक्रमण किया तथा यहाँ शासन किया। महमूद गजनी यद्यपि तुर्की मुस्लिम बादशाह था मगर इसका अफगानिस्तान में शासन था। इस कारण महमूद गजनी

के आक्रमण से लेकर गुलामवंश (१२०६–१२६०), खिलजीवंश (१२६०–१३२०) तुगलक वंश (१३२०–१४१२) तथा सैयद लोदी वंश (१४१२–१५२६) के शासन काल तक हिन्दुस्तान में तुर्क एवं पठान जाति के लोग आए तथा तुर्की एवं पश्तो भाषाओं तथा तुर्क-कल्चर तथा पश्तो-कल्चर का प्रभाव पड़ा ।

मुगल वंश की नींव डालने वाले बाबर का संबंध यद्यपि मंगोल जाति से कहा जाता है और बाबर ने अपने को मंगोल बादशाह 'चंगेज खां' का वंशज कहा है और मंगोल का ही रूप 'मुगल' हो गया मगर बाबर 'मंगोल' में नहीं अपितु सोवियत संघ में मध्य एशिया क्षेत्र के अंतर्गत 'तुर्केस्तान' की एक छोटी सी रियासत का मालिक था । उज्बेक लोगों के द्वारा खदेड़े जाने के बाद बाबर ने अफगानिस्तानपर कब्जा किया तथा बाद में १५२६ ई. में भारत पर आक्रमण किया । बाबर की सेना में मध्य एशिया के उज्बेक एवं ताजिक जातियों के लोग थे तथा अफगानिस्तान के पठान लोग थे ।

बाबर का उत्तराधिकारी हुमायूं जब अफगान नेता शेरखां (बादशाह शेरशाह) से युद्ध में पराजित हो गया तो उसने 'ईरान' में जाकर शरण ली । १५ वर्षों के बाद हुमायूं ने भारत पर पुनः आक्रमण कर, अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया । पन्द्रह वर्षों तक ईरान में रहने के कारण उसके साथ ईरानी दरबारी, सामन्त एवं सिपहसालार आए । हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब आदि मुगल बादशाह यद्यपि ईरानी जाति के नहीं थे; मंगोल जाति के वंशधर होने के कारण 'मुगल' थे फिर भी इन सबके दरबार की भाषा फारसी थी तथा इनके शासनकाल में पर्शियन कल्चर का हिन्दुस्तान की कल्चर पर अधिक प्रभाव पड़ा ।

इस्लाम धर्मावलम्बी अनेक जातियों की भाषाओं–संस्कृतियों का प्रभाव :

इस प्रकार जिसको आप इस्लामी संस्कृति कहते हैं या समझते हैं वह इस्लाम धर्म को मानने वाली विभिन्न जातियों की संस्कृतियों के लिए अंग्रेजों द्वारा दिया हुआ एक नाम है, लफ्ज है । अरबी, तुर्की, उज्बेकी, ताजिकी, अफगानी या पठानी, पर्शियन या ईरानी अनेक जातियों की भाषाओं एवं संस्कृतियों का हमारी भाषाओं पर तथा हिन्दुस्तान की कल्चर पर प्रभाव पड़ा है ।

जीवन के जिस क्षेत्र में हमने संस्कृति के जिस तत्व को ग्रहण किया तो उसके वाचक शब्द को भी अपना लिया । तुर्की से 'कालीन' (क़ालीन) और 'गलीचा' (ग़ालीचः), अरबी से 'कुर्सी' तथा फारसी से 'मेज़' और 'तख्त' तथा 'तख़ता' (तख़्तः) शब्द आए । फारसी से 'जाम' तथा अरबी से 'सुराही' तथा 'साकी' (साक़ी) शब्दों का आदान हुआ । 'कंगूरा' (फारसी–कंगूर :), 'गुंबद', बुर्जी (अरबी–बुर्ज) तथा 'मीनार' आदि शब्दों का चलन हमारी स्थापत्यकला पर अरबी–फारसी कल्चर के प्रभाव को बताता है । 'कव्वाली' (फारसी-क़व्वाली) 'गजल' (अरबी ग़ज़ल) तथा 'रुबाई' शब्दों से सब परिचित हैं क्योंकि उत्तर भारत में कव्वाल लोग कव्वाली गाते हैं तथा अन्य संगीतज्ञ गजल एवं रुबाई पढ़ते हैं । जब भारत के वातावरण में शहनाई गूंजने लगी तो अरबी शब्द 'शहनाई' भी बोला जाने लगा; मृदंग और पखावज के स्थान पर जब संगत करने के लिए 'तबले' का प्रयोग बढ़ा तो 'तबला' (अरबी–तब्ल :) शब्द हमारी भाषाओं का अंग बन गया । धोती एवं

उत्तरीय के स्थान पर जब पहनावा बदला तो कमीज (अरबी–क़मीस, तुर्की–कमाश), पाजामा (फारसी–पाजाम :), चादर, दस्ताना (फारसी–दस्तान :), मोजा (फारसी–मोज :) शब्द प्रचलित हो गए। जब काबुल और कंधार (अफगानिस्तान) तथा बुखारा एवं समरकंद प्रदेश (सोवियत संघ में ताजिकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान) से भारत में मेवाओं तथा फलों का आयात बढ़ा तो भारत की भाषाओं में 'अंजीर', 'किशमिश', 'पिस्ता', 'बादाम', 'मुनक्का' आदि मेवाओं तथा 'आलुबुखारा', 'खरबूजा', खुबानी (फारसी-ख़ूबानी), 'तरबूज' 'नाशपाती', 'सेब' आदि फलों के नाम शब्द भी आए। मुस्लिम शासन के दौरान मध्य एशिया और ईरानी अमीरों के रीतिरिवाजों के अनुकरण पर भारत के सामन्त भी बड़ी-बड़ी दावतें देने लगे थे। यहाँ की दावतों में 'गुलाब जामुन', 'गज्जक', 'बर्फी', 'बालू-शाही', 'हलवा' जैसी मिठाइयाँ परोसी जाने लगी। खाने के साथ 'अचार' का तथा पान के साथ 'गुलकंद' का प्रयोग होने लगा। गर्मियों में 'शरबत', 'मुरब्बा', 'कुल्फी' का प्रचलन हो गया। निरामिष में 'पुलाव' तथा सामिष में 'कबाब' एवं 'कीमा' दावत के अभिन्न अंग बन गए। शृंगार प्रसाधन तथा मनोरंजन के नए उपादान आए तो उनके साथ उनके शब्द भी आए। 'खस' का 'इत्र', 'साबुन', 'खिजाब', 'सुर्मा', 'ताश' आदि शब्दों का प्रयोग इसका प्रमाण है। 'कागज', 'कागजात', 'कागजी' जैसे अरबी शब्दों से यह संकेत मिलता है कि संभवतः अरब के लोगों ने भारत में कागज बनाने का प्रचार किया। 'मीनाकारी', 'नक्काशी', 'कसीदाकारी', 'रफूगीरी' जैसे शब्दों से कला-कौशल के क्षेत्र में शब्दों से जुड़ी जुबानों के क्षेत्रों के कल्चर के प्रभाव की जानकारी मिलती है।

उर्दू एवं पाकिस्तान :

रब्बानी साहब के दूसरे प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा कि उर्दू भले ही पाकिस्तान की राज्यभाषा (स्टेट लैंग्वेज) हो मगर उर्दू का पाकिस्तान में कोई 'भाषा–क्षेत्र' (लैंग्वेज एरिया) नहीं है। पाकिस्तान में पंजाबी, सिन्धी, पश्तो, बलूची के भाषा क्षेत्र हैं मगर उर्दू का कोई भाषा–क्षेत्र नहीं है।

रब्बानी साहब ने मुझे बीच में टोककर कहा कि आपके यहां भी तो अंग्रेजी का कोई लैंग्वेज एरिया नहीं है। मैंने कहा कि हमारे यहां अंग्रेजी का प्रयोग केन्द्र शासन द्वारा राजकाज चलाने के लिए 'राजभाषा' (आफिशियल लैंग्वेज) के रूप में होता है। हमारे यहां अंग्रेजी उस अर्थ में राज्यभाषा (स्टेट लैंग्वेज) नहीं है जिस अर्थ में आप उर्दू को पाकिस्तान की भाषा बता रहे हैं, जिसको पाकिस्तान के प्रत्येक 'प्रोविन्स' में ग्रेजुएट होने तक पढ़ना अनिवार्य है।

ऐसे देशों के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद भी अपने पूर्व विजेता शासकों की भाषा को अपने यहां बनाए रखा मगर पाकिस्तान ने देश के निर्माण के बाद हिन्दुस्तान की भाषा 'उर्दू' को स्टेट लैंग्वेज बनाया।

मैंने रब्बानी साहब से प्रश्न किया कि आपके यहां सेन्सस की रिपोर्ट के अनुसार कितने फीसदी लोगों की मादरी जबान उर्दू है। उन्होंने रिपोर्ट देखने के बाद मुझे सूचना देने का वायदा किया। बाद में उन्होंने मुझे सूचित किया कि १९८१ की सेन्सस

रिपोर्ट के अनुसार पाकिस्तान में पंजाबी ४८.१७%, पश्तो १३.१५%, सिन्धी ११.७७% तथा उर्दू ७.६०% फीसदी लोगों की मादरी जबान है। जंगलों में रहने वाले लोगों तथा बलूची आदि बाकी सभी जबानों को बोलने वाले १९.३१% फीसदी हैं। इनके बोलने वालों की संख्या रब्बानी साहब ने १९८१ की सेन्सस रिपोर्ट के आधार पर इस प्रकार बतलाई—

१.	पाकिस्तान की कुल जनसंख्या	—	८,४२,५३०००
२.	पंजाबी भाषियों की जनसंख्या	—	४,०५,८४६७०
३.	पश्तो भाषियों की जनसंख्या	—	१,१०,७९२६९
४.	सिन्धी भाषियों की जनसंख्या	—	०,९९,१६५७८
५.	उर्दू भाषियों की जनसंख्या	—	०,६४,०३२२८
६.	अन्य भाषाओं एवं बोलियों के भाषियों की जनसंख्या	—	१,६२,६९२५४

रब्बानी साहब ने ये आंकड़े अंग्रेजी में दिए थे। आठ-नौ करोड़ की आबादी वाले मुल्क की 'स्टेट लैंग्वेज' के मातृभाषियों की जनसंख्या चौसठ लाख। कौन हैं- ये लोग ? पाकिस्तान में तो उर्दू भाषा का कोई 'लैंग्वेज एरिया' नहीं है। ये चौसठ लाख लोग वे हैं जो पाकिस्तान बनने के समय या बनने के बाद भारत के उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश आदि राज्यों से पाकिस्तान चले गए थे तथा वहां ये लोग आज भी 'मुजाहिर' कहलाते हैं।

मैंने रब्बानी साहब से दरयाफ्त किया कि क्या मैं इन आंकड़ों का अपने किसी 'आर्टिकिल' में इस्तेमाल कर सकता हूं तो उन्होंने जवाब दिया—

'आप बेशक कर सकते हैं क्योंकि ये पाकिस्तान सरकार की रिपोर्ट में 'पब्लिश्ड' हैं।'

मैंने रब्बानी साहब को यह भी जानकारी दी कि उर्दू स्टाइल में मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दुओं तथा जैनियों ने उसी प्रकार साहित्य रचनाएँ की हैं जिस प्रकार मध्य युग में भारत के मध्यदेश में साहित्यिक भाषा-रूपों 'अवधी' तथा 'ब्रज' में मुसलमानों ने भी रचनाएँ की।

बोलचाल की भाषा तथा साहित्यिक भाषा का अन्तर :

रब्बानी साहब ने जानना चाहा कि उन्हें मुझसे बातें करते समय तो कोई खास फर्क नहीं मालूम पड़ रहा मगर जब वे हिन्दी की कविता सुनते हैं तो बहुत फर्क मालूम पड़ता है।

मैंने रब्बानी साहब को बोलचाल की भाषा तथा साहित्यिक भाषा (लिटरेरी लैंग्वेज) का अन्तर बतलाया। मैंने यह रेखांकित किया कि किसी भाषा को हम उसके 'ग्रामर' से पहचानते हैं। 'मैं Monday को Market जाऊँगा' यह जुमला हिन्दी-उर्दू का कहलाएगा। इसका कारण यह है कि इसका ग्रामर 'हिन्दी-उर्दू' का है, इसमें भले ही अल्फाज अंग्रेजी के अधिक हैं।

शब्द भाषा में आते रहते हैं, जाते रहते हैं। जब जीवन बदलता है, कल्चर बदलती है तो शब्द बड़ी जल्दी बदल जाते हैं। 'ग्रामर' के बदलने की रफ्तार बहुत धीमी होती है। इसी कारण कोई भाषा उसके व्याकरण से पहचानी जाती है।

मुस्लिम शासन के दौरान 'तुर्की', 'अरबी', 'फारसी', 'उज्बेकी', 'ताज़िकी', पश्तो आदि के शब्द किस प्रकार हिन्दुस्तान की भाषाओं में आकर घुलमिल गए– इस बारे में हमने अलग से विचार-विमर्श किया जिसके बारे में पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है। उर्दू बोलने वाले भले ही अरबी फारसी शब्दों का अधिक प्रयोग करते हों मगर भारत की भाषाओं में घुलमिल जाने वाले शब्दों का सभी लोग प्रयोग करते हैं। मूल शब्द के पहले या बाद में जुड़कर उनका अर्थ बदलने वाले तुर्की, अरबी, फारसी के 'प्रिफिक्सिस' (उपसर्गों) एवं 'सफिक्सिस' (प्रत्ययों) का भी हिन्दी की सभी उपभाषाओं एवं बोलियों में बोलने वाले तथा साहित्य रचना करने वाले प्रयोग करते हैं। 'बदचलन', 'बावजूद', 'बाकायदा', 'बेईमान', 'बेशक' आदि शब्दों का सभी प्रयोग करते हैं जिनमें 'बद–', '–बा', 'बे–' उपसर्ग हैं। इसी प्रकार 'पानदान', 'पीकदान', 'जादूगर', 'बाजीगर', 'कारीगर', 'सौदागर', 'जेलखाना', 'कारखाना', 'इलाहाबाद', 'हैदराबाद', 'अहमदाबाद' आदि शब्दों में '–दान', '–गर', '–खाना', '–आबाद' पर प्रत्यय हैं। क्रिया की कुछ धातुओं का भी सभी प्रयोग करते हैं। खरीदना, गुजरना, वसूलना आदि का हिन्दी साहित्य में भी प्रयोग होता है तथा उर्दू साहित्य में भी। इस प्रकार जो प्रभाव पड़ा है वह शब्दों, उपसर्गों प्रत्ययों, धातुओं पर पड़ा है। उर्दू पर अधिक, शेष भाषा–रूपों पर कम।

मगर अरबी, फारसी अथवा तुर्की के व्याकरण को हमारी भाषाओं ने ग्रहण नहीं किया। हिन्दी-उर्दू के 'ग्रामर' में कोई अन्तर नहीं है। अपवादस्वरूप सम्बन्धकारक चिन्ह तथा बहुवचन प्रत्यय को छोड़कर। हिन्दी की उपभाषाओं, बोलियों, व्यावहारिक हिन्दी, मानक हिन्दी में बोला जाता है—'गालिब का दीवान'। अरबी-फारसी के अत्यधिक प्रभाव के कारण उर्दू में बोलते हैं 'दीवाने गालिब'। इसी प्रकार उर्दू में 'मकानात' में 'आत' जोड़कर बहुवचन प्रयोग किया जाता है। इनको छोड़कर हिन्दी-उर्दू का ग्रामर एक है। 'मकानों को'–यह प्रयोग हिन्दी में भी होगा तथा उर्दू में भी। इस कारण चूँकि इनका ग्रामर एक है इस कारण हिन्दी-उर्दू भाषा की दृष्टि से एक हैं। इसीलिए बोलचाल में दोनों में फर्क नहीं मालूम पड़ता।

'साहित्यिक भाषा' में भाषा के अलावा अन्य बहुत से तत्त्व होते हैं। साहित्य में कथानक होता है, वहाँ किसी की किसी से उपमा (सिमली) दी जाती है, अलंकृत शैली (ओरनेट स्टाइल) होती है, प्रतीक रूप में (सिम्बलिकली) वर्णन होता है, छंद (मीटर) होते हैं। प्रत्येक जाति के साहित्य की अपनी परम्परा होती है; कथा, कथानक, कथानक-रूढ़ियाँ, अलंकार योजना, प्रतीक योजना, बिम्ब योजना, छंद विधान की विशेषताएँ होती हैं।

एक भाषा 'हिन्दी-उर्दू' की दो साहित्यिक शैलियाँ (स्टाइल्स) विकसित हुईं। एक शैली 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' कहलाती है जिसमें भारतीय प्रतीकों, उपमानों,

बिम्बों, छंदों तथा संस्कृत की तत्सम एवं भारत के जनसमाज में प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है तथा जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। 'उर्दू' स्टाइल के अदबकारों ने अरबी एवं फारसी साहित्य में प्रचलित प्रतीकों, उपमानों, बिम्बों, छंदों का अधिक प्रयोग किया। जब अरबी-फारसी अदब की परम्परा के अनुरूप या उससे प्रभावित होकर लिखा जाता है तो रचना में केवल अरबी साहित्य तथा फारसी साहित्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का बहुल प्रयोग तो होता ही है उसके साथ-साथ शैलीगत उपादानों तथा लय और छंद में भी अन्तर हो जाता है जिससे रचना की जमीन और आसमान बदले-बदले नजर आने लगते हैं। यदि कथानक रामायण या महाभारत पर आधारित होते हैं तो 'रचना-वातावरण' एक प्रकार का होता है, यदि कथानक 'लैला-मजनूँ' 'युसुफ-जुलेखा' 'शीरी-फरहाद' की कथाओं पर आधारित होते हैं तो 'रचना-वातावरण' दूसरे प्रकार का होता है।

उपमा 'कमल' से या 'चाँद' से दी जाती है तो पेड़ की एक शाखा पर जिस रंग और खुशबु वाले फूल खिलते हैं, इससे भिन्न रंग और खुशबु वाले फूल पेड़ की दूसरी शाखा पर तब खिलने लगते हैं जब उपमान 'आबे जमजम', 'कोहेनूर', 'शमा', बुलबुल' आदि हो जाते हैं। बोलचाल में तो 'हिन्दी-उर्दू' वाले सभी लोग रोटी, पानी, कपड़ा, मकान, हवा, दूध, दही, दिन, रात, हाथ, पैर, कमर, प्यास, प्यार, नींद, सपना आदि शब्दों का समान रूप से प्रयोग करते हैं, मगर जब 'चांद उगा' के लिए एक शैली के साहित्यकार 'चन्द्र उदित हुआ' तथा दूसरी शैली के अदबकार 'माहताब उरुज हो गया' लिखने लगते हैं तो एक ही भाषा-धारा दो भिन्न प्रवाहों में बहती हुई दिखाई पड़ने लगती है तथा जब साहित्य की भिन्न परम्पराओं से प्रभावित एवं प्रेरित होकर लिखा जाता है तो पानी की उन धाराओं में अलग-अलग शैलियों के भिन्न रंग मिलकर उन धाराओं को अलग-अलग रंगों का पानी बना देते हैं।

पाकिस्तानी उर्दू तथा हिन्दी :

रब्बानी साहब मेरे सारे संकेत समझ गए। उन्होंने मुझे सूचना दी। मैं जिस जमीन और आसमान की बात कर रहा हूं तथा उर्दू अदब को अरबी और फारसी के अदब से जोड़कर उसकी स्टाइल की जो खूबियां बता रहा हूं उससे वे इन्कार करते हैं; उस पर एतबार नहीं कर सकते। उन्होंने बताया कि आपके मुल्क के उर्दू के अदब में भले ही ये खूबियां मिलती हों मगर पाकिस्तान के अदबकार अरबी फारसी के मुकाबिले अपनी धरती पर बोले जाने वाले अल्फाजों का प्रयोग करते हैं तथा हमारे अदब में ईरान या अरब की जमीन और आसमान नहीं, पाकिस्तान की जमीन और आसमान हैं।

बाद में उन्होंने मुझे अपने राजदूतावास में बुलाकर पाकिस्तानी उर्दू के साहित्यकारों की रचनाएँ सुनाईं। पाकिस्तानी फिल्मों तथा टी.वी. सीरियल्स के कैसेट देखने के लिए दिए। रचनाएँ सुनकर तथा कैसेट देखकर-सुनकर रब्बानी साहब की बात की पुष्टि हुई। मैं यहाँ इतना अवश्य कह सकता हूं कि पाकिस्तान में भाषा और साहित्य दोनों धरातलों पर जिस उर्दू भाषा का विकास हो रहा है वह अपनी प्रकृति में भारत में सन् १९६० के बाद हिन्दी कथा साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा के अधिक निकट है, अपेक्षाकृत भारत में लिखे जाने वाले 'उर्दू अदब' की भाषा के।

हिन्दी एवं उर्दू की भाषिक एकता के संबंध में मैंने रब्बानी साहब से यह प्रश्न किया कि क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यदि दो लैंग्वेज भिन्न होती हैं तो एक भाषा के वाक्य का हम दूसरी भाषा में अनुवाद या तर्जुमा कर सकते हैं। उन्होंने सहमति व्यक्त की। मैंने कहा कि मैं हिन्दी के कुछ जुमले बोल रहा हूं आप मुझे यह बतलाने की कृपा करें कि उर्दू में इनका अनुवाद किस प्रकार होगा।

(१) मैं रोजाना बाजार जाता हूं।
(२) मुझे चार रोटियां खानी हैं।
(३) हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की धरती के पानी तथा आकाश की हवा में क्या फरक है।

उन्होंने ठहाका लगाया और कहा कि प्रोफेसर साहब आप तो उर्दू बोल रहे हैं और मुझसे कह रहे हैं कि मैं इनका उर्दू में ट्रान्सलेशन कर दूं। आप हिन्दी में बोलिए तो मैं ट्रान्सलेशन करने की कोशिश करूँ।

अन्त में, मैंने रब्बानी साहब से कहा कि 'मैं भाषा विज्ञान का भी विद्यार्थी हूं तथा मैंने भाषा विज्ञान में पढ़ा है कि भिन्न भाषा–भाषी व्यक्ति परस्पर बातचीत नहीं कर सकते, विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर सकते। जैसे यदि मुझे फ्रेंच भाषा नहीं आती तथा फ्रेन्च भाषी व्यक्ति को मेरी भाषा नहीं आती तो यदि वह फ्रेन्च बोलेगा तो मैं उसकी बात नहीं समझ पाऊँगा तथा मैं हिन्दी में बोलूंगा तो वह मेरी बात नहीं समझ पाएगा। दोनों के बीच संकेतों, मुख मुद्राओं, भावभंगिमाओं के माध्यम से भले ही भावों का आदान–प्रदान हो जाए मगर भाषा के द्वारा विचारों का आदान–प्रदान नहीं हो पाएगा। मैंने प्रश्न किया कि हम लोग इतनी देर से बातचीत कर रहे हैं, मैं तो आपकी बातें पूरी तरह से समझ सका हूं, आप मेरी बात समझ सकें हैं या नहीं? रब्बानी साहब ने कहा— 'बात समझने में तो मुझे भी दिक्कत नहीं हुई। अलबत्ता कुछ अल्फाज मेरी समझ में नहीं आए थे जिन्हें आपने अंग्रेजी में ट्रान्सलेट कर दिया'। मैंने कहा– 'रब्बानी साहब, आप कहते हैं कि आपको हिन्दी नहीं आती, आप कह रहे हैं कि इतनी देर तक आप उर्दू में बोले।'

'मैं कह सकता हूँ कि मुझे उर्दू नहीं आती, मैं कहता हूं कि इतनी देर तक मैं हिन्दी में बोला। मगर हम दोनों इतनी देर तक बातचीत करते रहे और एक दूसरे की बात को समझते भी रहे और इसीलिए मैं कहता हूं कि हिन्दी तथा उर्दू अलग-अलग जुबान नहीं हैं।'

अंतिम वाक्य मैंने यह कहा कि आप भले ही पाकिस्तान से मुहम्मद साहब के मदीना में जाकर चादर चढ़ावें, वहां के लोग आपको हिन्दी ही कहते होंगे और आपकी चादर को 'हिन्द की चादर'।

उस मुलाकात का यह असर हुआ कि रब्बानी साहब मेरे अच्छे दोस्त हो गए तथा बाद में जब भी भारत, पाकिस्तान तथा बंगलादेश के राजनयिकों की बैठकें जमती थीं तो सबसे पहले रब्बानी साहब यह प्रस्ताव रखते थे कि भाई अपनी धरती की उस बोली में बोलेंगे जो हम सबको मिलाती है। हम अंग्रेजी में क्यों बोलें?

□

प्रेमचंद की पुत्री श्रीमती कमलादेवी श्रीवास्तव से प्रो. लक्ष्मीनारायण दुबे की बातचीत

डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

प्रेमचंद की ७६ वर्षीय सबसे बड़ी संतान श्रीमती कमलादेवी श्रीवास्तव सिविल लाइन्स, सागर में रहती हैं। उनके पुत्र डा. प्रबोधकुमार श्रीवास्तव डाक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय में नृतत्वशास्त्र विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष हैं। कमला जी की स्मरण शक्ति काफी अच्छी और उनकी अभिव्यक्ति साफ-सुथरी है। उनका भरापूरा तथा सम्पन्न परिवार है और प्रेमचंद विषयक संस्मरणों तथा अवधारणाओं में वे साफगोई से वार्तालाप करती हैं और अपने सुस्पष्ट मंतव्य प्रकट करती हैं। उनसे जब प्रेमचंद विषयक घण्टों बातचीत हुई और साक्षात्कार लिया गया तो वे बड़ी प्रसन्न हुईं। अनेक बार तो वे अपने पूज्य पिताजी प्रेमचंद, जिनको वे 'बाबूजी' कहती रही हैं और सम्पूर्ण वार्तालाप में प्रेमचंद नाम न लेकर सिर्फ 'बाबूजी' ही कहती रहीं, उनकी याद करके रोने लगीं। उनकी अविरल अश्रुधारा प्रवहमान हो गयी। समूचा प्रेमचंद-युग जैसे चलचित्र या दूरदर्शन की धारावाहिक शृंखला के सदृश्य गतिशील हो गया। बातचीत सभी पहलुओं पर हुई और खुलकर हुई। उन्होंने किसी भी बात को छिपाने की चेष्टा नहीं की। वे बातचीत करते-करते गद्गद हो जाती और भाव-विभोर भी। इस भेंटवार्ता से सिर्फ प्रेमचंद ही नहीं, उनके समकालीन साहित्यकार और स्वयं कमलाजी के परिवार के भी अनेक तथ्य तथा सारभूत बातें ज्ञात हुईं।

सागर बुन्देलखण्ड तथा बुन्देली संस्कृति का प्राण है। बुन्देली संस्कृति की कपिला गाय को दुहने वाला सागर में ही रहता है। यह कम सुखद तथ्य नहीं है कि प्रेमचंद की पुत्री का जन्म सिर्फ बुन्देलखण्ड में ही नहीं हुआ अपितु उनकी ससुराल, कार्य-स्थल तथा जीवन का अधिकांश भाग भी इसी लोकसंस्कृति के शाश्वत परिवेश में व्यतीत हुआ। अतएव, बातचीत की कुंजी इसी बुन्देली संस्कृति से ही शुरू हुई और प्रेमचंद के सपने के भारत पर जाकर समाप्त हो गयी। बातचीत के मुद्दे तथा प्रश्न निम्न प्रकार रहे—

प्रेमचंद का सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से रहा और आपका भी : इससे प्रेमचंद कितने प्रभावित हुए ?

मेरा जन्म महोबा में सन् १९१४ में हुआ। उस समय बाबूजी वहां विद्यालय-निरीक्षक थे। उसी समय ही प्रेमचंद की 'सोजे वतन' को हमीरपुर जिले के कलक्टर ने जलवा दिया था और उन्हें डांटा था। जिलाधीश ने कहा था कि यह तो अंग्रेजों का जमाना है इसलिए सिर्फ चेतावनी ही दी जाती है अन्यथा मुसलमान-शासन में होते तो दोनों हाथ कटवा दिये जाते क्योंकि तुम्हारा राजद्रोहात्मक लेखन था। फिर बाबूजी धनपतराय तथा नवाबराय से प्रेमचंद हो गये।

बाबूजी दौरे करने जाते थे और बुन्देलखण्ड में आलू तथा घुइयां की सब्जी खाने के कारण, उनको जीवन भर के लिए प्राणलेवा खूनी पेचिश की बीमारी हो गयी। मेरी मां शिवरानी देवी बताती थी कि महोबा में तो एक बार ऐसी स्थिति हो गयी कि वे बड़ी मुश्किल से बच पाये। मेरी मां को भी यहीं से ही संग्रहिणी को शिकायत हो गयी थी।

प्रेमचंद लगभग दो वर्षों तक बुन्देलखण्ड में रहे। वे बुन्देली संस्कृति से प्रभावित भी हुए। उन्होंने रानी सारंधा, आत्माराम जैसी कहानियां लिखी और आल्हा जैसे लोक-काव्य पर भी लिखा।

आपकी शिक्षा-दीक्षा कैसे हुई ?

मैं तो बाबूजी के साथ महोबा, गोरखपुर, लमही, लखनऊ, काशी आदि स्थानों में रही। किसी शाला या महाविद्यालय में पढ़ने नहीं गयी। सिर्फ हिन्दी ही पढ़ी और वह भी घर पर। अध्यापक घर पर मेरे दोनों भाइयों को पढ़ाने आते थे तो मैं उनसे पहले ही सीख लेती थी। प्रेमचंद की बड़ी इच्छा थी कि उनकी संतान उर्दू, अरबी तथा फारसी भी सीखें, परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। मैंने अंग्रेजी नहीं पढ़ी। किसी शाला में न पढ़ने का कारण आर्थिक नहीं था बल्कि घरेलू झंझट ही थे। दोनों भाई छोटे थे, मां बीमार रहती थीं इसलिए भाइयों को सम्हालना पड़ता था। ऐसी हालत में विद्यालयीन शिक्षा सम्भव नहीं थी।

प्रेमचंद पिता और गृहस्थ के रूप में कैसे थे ?

प्रेमचंद परम स्नेही पिता थे। वे सद्गृहस्थ थे। उनको हमने कभी भी क्रोध करते नहीं देखा। उनकी सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वे बाहर की दुनिया की सभी बातें घर में आकर बता दिया करते थे। उनका किसने विरोध किया-- किसने क्या कहा और किस सभा-बैठक में क्या हुआ? वे सभी बातों की चर्चा घर में किया करते थे। मेरे सबसे बड़ी संतान होने के नाते, वे मुझे सबसे अधिक चाहते थे। मेरा और अमृतलाल का मुखमण्डल प्रेमचंद से मिलता है परंतु श्रीपतराय का शिवरानी देवी के साथ। प्रेमचंद ने पैसे को लेकर कभी न तो चिंता की और न हाय-हाय ही की। उनके ही रिश्तेदारों ने सरस्वती प्रेस, काशी को लेकर काफी परेशान किया और उनके धन को भी हड़प गये परन्तु उन्होंने अपने तेवर नहीं बदले।

उनका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी था। तनाव नहीं था। वे परदा प्रथा के बड़े विरोधी थे। प्रेमचंद की दो लड़कियां और एक पुत्र का देहांत हो गया था। श्रीपतराय के बाद एक पुत्र और हुआ था जो कि गोरखपुर में ही एक वर्ष का होकर, चेचक में उसका देहांत हो गया। श्रीपतराय तथा अमृतराय की आयु में पांच वर्ष का अन्तर है।

प्रेमचंद की जीवन की कतिपय व्यावहारिक बातें बताइए :

बाबूजी घर में लालटेन के प्रकाश में लिखा करते थे। वे रात में उठ जाते थे और फिर लिखा करते थे। मेरी मां जब लालटेन दूर कर देती तो फिर वहीं सो जाते थे। वे आराम बहुत कम करते थे। वे किसी के कहने पर नहीं लिखते थे। स्वतः प्रेरणा से लिखा करते थे।

बाबूजी जब लमही जाते थे तब गांव के आदमियों से दिन भर मिला करते थे। उनकी कहानियां सुना करते थे। उन्हीं में से ही अपनी कथावस्तु तथा पात्र लिया करते थे। उनके समस्त पात्र उनके परिवेश से ही निकले हैं। मैं उनके सभी पात्रों को जानती हूं। वे अपने देहांत के समय भी लमही जाना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि वे वहां स्वस्थ हो जायेंगे। उनको अपने ग्राम लमही से बड़ा प्यार था। मुझे भी आज तक लमही ग्राम भूला नहीं है। मैं इतने स्थानों पर रही परंतु मुझे आज भी सपने में यदि मकान दिखायी देता है तो वह सिर्फ लमही का अपना मकान ही।

जब अमृतराय 'कलम का सिपाही' लिख रहे थे तब उनको मेरी मां के द्वारा लिखित पुस्तक 'प्रेमचंद : घर में' नहीं मिल रही थी– तब मैंने ही उसे उन्हें दी थी।

प्रेमचद के चित्र या तो लखनऊ में उतरे अथवा बम्बई में।

प्रमचंद सागर कब-कब आये ?

मेरी शादी सन् १९२९ में हुई। उसी समय बाबूजी, श्रीपतराय, मेरे फूफा सोमेश्वर तथा मामा रामकिशोर चौधरी देवरी फलदान करने पहुंचे थे। इस समय वे सागर नहीं रुके थे।

मेरे ससुर देवरी के बड़े जमींदार थे। उनका नाम श्री भवानी प्रसाद श्रीवास्तव था। मेरे बाबा ससुर पुलिस में इंस्पेक्टर थे। उनको डाकुओं ने मार डाला था।

मेरे पति स्व. श्री वासुदेवप्रसाद श्रीवास्तव वकील तथा जमींदार थे। उन्होंने बी.ए. जबलपुर से तथा एल.एल.बी. प्रयाग से किया था। वकील साहब का लगभग पांच वर्ष पूर्व देहांत हो गया। मेरे इस समय दो पुत्र तथा तीन पुत्रियां हैं।

हम लोग देवरी से सन् १९३३-३४ में सागर आ गये। इसी समय से ही मेरे पति ने वकालत करना शुरू कर दिया। पहले हम लोग सागर में किले के पास नजरबाग में रहते थे। फिर सिविल लाइंस में आ गये।

प्रेमचंद सागर में दो बार आये। दोनों बार मेरी मां शिवरानी देवी भी उनके साथ आयी। एक बार नागपुर में किसी बैठक में सम्मिलित होकर लौटते समय सागर

आये । वे फिर बम्बई से सिनेमा के कार्य को छोड़ कर लौट रहे थे. तब भी आये थे । बम्बई में उनकी पेट की बीमारी ने काफी जोर पकड़ लिया था । यह बात कोई सन् १९३४ की है । उसके दो वर्ष बाद तो उनका देहांत ही हो गया ।

सागर में वे काफी थके थे - इसलिए ज्यादातर आराम ही करते रहे । उनसे सागर के कौन-कौन से साहित्यकार मिलने आये - इसका मुझे ज्ञान नहीं है क्योंकि उस समय यहां बड़ा कड़ा परदा था ।

ससुर-दामाद के सम्बंध अत्यंत प्रीतिपूर्ण थे । वे अपने दामाद को बेटे की तरह चाहते तथा मानते थे ।

मेरा सबसे बड़ा पुत्र विनोद उनका बड़ा लाड़ला तथा चहेता था क्योंकि उनका सबसे बड़ा नाती था । जब वे काशी में मृत्यु शैया पर थे–उस समय विनोद उनको नाना बाबू कहता था और उनके पास खेला करता था ।

मैं अंत समय में बाबूजी के पास काशी में रही थी । उनको २५ जून १९३६ को पहली खून की उल्टी हुई । फिर दूसरा रक्त वमन २५ जुलाई, १९३६ को हुआ । उनको पेट में पानी भरने की बीमारी हो गयी थी । वे अपने गांव जाना चाहते थे परंतु वहां चिकित्सा कैसे हो पाती ? मेरी मां, मामा तथा जैनेन्द्रकुमार अंत समय में उनके साथ थे । उनको मेरी मां ने मंजन कराया और आठ अक्टूबर, १९३६ को वे लुढ़क गये । फिर बेहोश हो गये और फिर उनकी चेतना नहीं लौटी । मैं जून, १९३६ से दिसम्बर, १९३६ तक काशी में ही रही थी ।

सागर में मुझसे मिलने पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वृन्दावनलाल वर्मा, मातादीन शुक्ल आये थे । मैं स्वयं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से मिलने गयी थी ।

आप प्रेमचंद के साथ काफी समय तक रहीं : उनसे मिलने वाले साहित्यकार कौन-कौन थे ?

१९२१ में हम लोग गोरखपुर में थे । तब महात्मा गांधी जलियांवाला बाग काण्ड तथा चौरी चौरा काण्ड के बाद गोरखपुर आये थे । लाखों की भीड़ थी - फिर ऐसी भीड़ देखने को नहीं मिली आज तक । मैं भी बाबूजी तथा अम्मा के साथ सभा में गयी । गांधी जी के दर्शन किये थे । उस समय बाबूजी गोरखपुर में नार्मल स्कूल में अध्यापक थे । गांधी जी से ही प्रभावित होकर बाबूजी ने सरकारी नौकरी छोड़ दी थी ।

कानपुर में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का घर हमारे घर के बहुत पास था । मैं अमृतराय को गोदी में बिठाकर उनके घर जाया करती और उनको 'चाचा' कहती थी । 'नवीन' जी सिर्फ एक कमरे में ही रहते थे । उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी । वे अक्सर बाबूजी से मिलने घर आया करते थे । बाबूजी से उनके बड़े मधुर और घनिष्ठ सम्बंध थे । श्रीपतराय और अमृतराय दोनों ही 'नवीन' जी को बहुत मानते रहे । उस समय ऐसा नहीं लगता था कि वे एक महान् साहित्यकार हैं। उस समय सारे साहित्यकार बड़ी सादगी के साथ रहते थे और वे लेखन से ही सम्बंध रखते थे. अन्य तरीकों से नहीं ।

लखनऊ में 'निराला' मिलने आते थे ।

काशी में शांतिप्रिय द्विवेदी, श्रीपतराय तथा अमृतराय को पढ़ाते थे।

काशी में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी अक्सर मिलने आते थे। जैनेन्द्रकुमार को तो बाबूजी ही ने बनाया। 'अज्ञेय' की कहानियों को भी प्रेमचंद ने ही छापा जो कि जेल से आती थी। 'अज्ञेय' नाम भी प्रेमचंद का ही दिया हुआ है न कि जैनेन्द्र कुमार का।

बाबूजी के जयशंकर 'प्रसाद' से बड़े घनिष्ठ सम्बंध थे। हम लोग बाबूजी के देहांत के बाद प्रसाद जी के घर भी गये थे। वे प्रेमचंद की याद करके फूट-फूट कर रोने लगे।

प्रेमचंद के प्रसाद के साथ मतभेद थे। वे प्रसाद की भाषा को पसंद नहीं करते थे। अक्सर घर में भी प्रसाद की चर्चा किया करते थे। प्रेमचंद भाषा के मामले में बड़े उदार तथा व्यापक थे। उनका अभिमत था कि हमें सब तरफ से शब्दकों को हिन्दी में ले लेना चाहिए। प्रेमचंद के देहांत के कुछ ही महीनों बाद तो प्रसाद की भी मृत्यु हो गयी थी।

सन् १९३२-३३ में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी प्रेमचंद को शांतिनिकेतन बुलाया था परन्तु वे नहीं गये। प्रेमचंद ने लिख भेजा था कि हम मध्यवर्ग के साधारण वित्तीय स्थिति वाले व्यक्ति हैं इसलिए इतना पैसा खर्चा करके, शांति निकेतन पहुंचना हमारे लिए सम्भव नहीं।

एक बार किसी राजा ने भी प्रेमचंद को अपना जीवन चरित्र लिखने के लिए सादर तथा काफी धनराशि के प्रावधान के साथ आमंत्रित किया था परन्तु उन्होंने उसे ठुकरा दिया। प्रेमचंद का मत था कि लेखक को स्वांतः सुखाय ही लिखना चाहिए और आर्थिक प्रलोभनों से दूर रहना चाहिए। साहित्यकार की कलम स्वतंत्र होनी चाहिए–उसे बेचना नहीं चाहिए।

प्रेमचंद को प्रवासीलाल वर्मा से हानि पहुंची थी।

प्रेमचंद की परम्परा आपके परिवार में कितनी आगे बढ़ी ?

कुछ अमृतराय में आयी। मैंने प्रेमचंद का समूचा साहित्य पढ़ा है। उनकी छोटी सी आत्मकथा भी पढ़ी।

मेरी दो कहानियां सन् १९३० के लगभग 'हंस' तथा 'माधुरी' में प्रकाशित हुई थी जिनके शीर्षक थे—(क) एक बलिदान (ख) एक श्रद्धा।

मेरे पर मेरी मां की लेखनी का भी प्रभाव पड़ा जिसमें नारी का हृदय तथा माता की ममता की अभिव्यंजना मिली है। मेरी एक कहानी में तो हिन्दू-मुसलमान एकता पर आग्रह है तो दूसरी में देवी-देवता की मनौती पर।

आजकल कुछ समीक्षक कहते हैं कि प्रेमचंद कम्युनिस्ट थे। आपका क्या अभिमत है ?

बिलकुल गलत है। वे किसी भी तरफ से कम्युनिस्ट नहीं थे। यह गलत

प्रोपेगेण्डा है। उनकी विचारधारा यद्यपि उदार थी और वे जमाने के रफ्तार के साथ चल रहे थे। उन्होंने कभी ऐसा नहीं जताया कि वे कोई महान् साहित्यकार थे। वे लेखन को अपना धर्म मानते थे—इसलिए लिखते थे। हमने तो उनको सिर्फ बाबूजी [पिता] की दृष्टि से ही देखा था – वे आज एक महान् हस्ती माने जा रहे हैं—उन्होंने तो कभी ऐसा कोई लक्ष्य प्रकट नहीं किया था। उन्होंने ५७ वर्ष की आयु तक काफी लिखा परन्तु मेरे विचार से वे कम्युनिस्ट कदापि नहीं थे।

एक निजी प्रश्न : ऐसा पढ़ने को मिला है कि प्रेमचन्द का किसी दूसरी स्त्री के साथ भी सम्बंध था ?

मुझसे यह प्रश्न नयी दिल्ली में डा कमलकिशोर गोयनका ने भी पूछा था। उनसे श्रीपतराय ने मिलाया था। दूरदर्शन ने भी भेंटवार्ता ली थी। प्रेमचन्द जन्म-शताब्दी के अवसर पर आकाशवाणी छतरपुर ने भी साक्षात्कार लिया था।

मुझे इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि बाबूजी के किसी अन्य नारी के साथ सम्बंध रहे हैं मैं तो देहांत के समय उनके पास छः महीने लगातार रही। मुझे नहीं मालूम कि मेरी मां को उन्होने यह बात कब-कैसे बतायी ?

प्रेमचन्द जन्म-शताब्दी में आपकी क्या हिस्सेदारी रही ?

मैं तो कहीं नहीं गयी। मुझे भीड़-भाड़ में जाना पसंद नही। भीड़-भाड़ में कोई बात सुनता भी नहीं है। सागर मे कुछ लोग आये थे, शाल तथा मिठाई दे गये थे। तुम जैसी बातचीत कर रहे हो–यही मुझे अच्छी लगती है। इसमे एकांत में. फुरसत में, अच्छी तरह बातचीत हो जाती है। ऐसे माहौल में तो सारी बातें बतायी जा सकती हैं।

प्रेमचन्द का सपने का भारत क्या था ?

प्रेमचन्द भारत को प्रेमाश्रम के रूप में देखना चाहते थे। वे हिन्दू-मुस्लिम दंगों के सख्त खिलाफ थे। वे साम्प्रदायिक एकता में पूर्ण विश्वास करते थे। वे प्रेम तथा मनुष्यता का संदेश देना चाहते थे। वे किसी भी प्रकार का विद्वेष या झगड़ा नहीं चाहते थे। वे शोषण के विरुद्ध थे। वे जात-पांत के विरोधी थे। वे अमीर-गरीब की खाई को पाटना चाहते थे। वे छुआछूत को मिटाना चाहते थे। वे लोककल्याण के पक्षधर थे। वे मालगुजारों के अन्याचारों को खुलकर सामने लाना चाहते थे।

अश्रुधारा तथा ममता का निकेतन :

समूचे साक्षात्कार में ऐसा महसूस होता रहा कि जैसे प्रेमचन्द की आत्मा कमलाजी में विराजमान है। उनका अपने बाबूजी की याद करके, बारम्बार रोना और एक ममता मण्डिता मां का स्वरूप बराबर अभिभूत करता रहा। प्रेमचन्द के देहांत को ५४ वर्ष हो चुके हैं परन्तु प्रेमचन्द के विशाल, बहुमुखी तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त वाङ्मय के अतिरिक्त, कमलाजी में हम प्रेमचन्द तथा शिवरानी देवी–दोनों का ही गंगा -जमुनी संगम पा सकते हैं। उनके व्यक्तित्व तथा व्यष्टि स्वभाव को देखकर ही प्रेमचन्द का स्मरण हो आता है।

तुलसी तथा प्रेमचन्द समुद्र पार जा चुके हैं और उन पर सहस्त्राधिक ग्रन्थ देश तथा विदेश में लिखे जा चुके हैं परन्तु कमलाजी में जो निजता, स्नेहिलता, अपनत्व तथा उन्मुक्त हृदय है और उनसे निसृत जो बातें हैं-वे ऐसी हैं जिनको हम अन्तः सलिला और यथार्थ छवि की उद्घाटिना के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। सबसे बड़ी संतान होने के नाते उन्होंने प्रेमचन्द को सर्वाधिक देखा है और उनकी जीवन यात्रा तथा साहित्य साधना की वे आज सबसे बड़ी साक्षी हैं। बुन्देली माटी की महक से उनका मुखमण्डल दीप्तमान है। प्रेमचन्द-पुण्यतिथि के अवसर पर प्रेमचन्द के इस जीवित तथा सर्वश्रेष्ठ स्मृति चिह्न को हमारा नमन।

□

देश-भक्त

तेलुगू लेखक :

श्री चलासानि प्रसाद राव

अनुवाद :

वाई. सी. पी. वेंकटरेड्डी

'जय तेलुगू देशम !' सुब्बाराव ने मन ही मन कहा और डाइनिंग टेबुल पर एक घूंसा जमा कर अपनी शक्ति आजमा ली ।

टेबुल पर तश्तरियाँ, कटोरे आदि जो बर्तन थे हिल गये, उनके आपस में टकराने से जो खनक हुई वह सुब्बाराव को ऐसी सुनाई पड़ी मानों वे 'जय तेलुगू देशम कह रहे हों !'

सुब्बाराव की मां चिल्लायी और कहा. 'इतनी जल्दी क्या है बेटा ? थोड़ी देर सब्र करो । दस मिनट में रसोई बन जाती !'

सुब्बाराव जी बड़े देश-भक्त हैं । यद्यपि उनकी उम्र लगभग अट्ठाईस साल की है फिर भी उनको कोई नौकरी नहीं मिली, इसीलिए तो उन्होंने तानाशाही को खत्म करने के उद्देश्य से पिछले चुनावों में लगन से काम किया और तेलुगू देशम को गद्दी पर बिठाने में सफल हुए, इस प्रयत्न में उन्होंने अपना सर्वस्व खो दिया ।

लेकिन...फिर भी..... हमारे सुब्बाराव को कोई नौकरी नहीं मिली...कैसे मिलती ? अपने पसंद की सरकार को गद्दी पर बिठाये अभी एक साल भी पूरा नहीं हो पाया कि सब मिल कर उसके खिलाफ जादू टोना कर रहे हैं, ऐसी दशा में देश की प्रगति कैसे हो सकती है ?

इसलिए......

सुब्बाराव ने तय कर लिया कि जब तक नौकरी नहीं मिलेगी तब तक मन लगा कर लोगों की सेवा करते हुए सरकार की मदद करनी चाहिए ।

सुब्बाराव अभी पूरी तरह खाना नहीं खा पाया था कि पड़ोस के घर में जमजमा शुरू हुआ, सुब्बाराव कान लगाकर सुनने लगे, यद्यपि बहुत दिनों से उस घर मे जमजमा सुनाई देता है फिर भी आजकल उसमें जरा परिवर्तन नजर आता है, आज तो कतई उसमें नवीनता नजर आ रही है।

'यदि तुम्हारे बदन पर पेट्रोल उडेल कर जला देते तो भी पाप नहीं लगता।' एक बुढ़िया तैश में आ कर कह रही है।

'तुम्हें इतना कष्ट उठाने की जरूरत नहीं है माँ! चूहे मारने की दवा है न? उसे निगल कर मर जाऊँगी।' एक लड़की बोल रही है।

सुब्बाराव चौंक पड़े और मन ही मन सोचा, लगता है, बहुओं को सताने का रिवाज यहाँ भी अमल में लाया जा रहा है। वह भी कहीं दूर पर नहीं ..पड़ोस में ही...! छि:...छि: मेरे जीते जी अपने पड़ौस में एक भोलीभाली बहू की पेट्रोल-हत्या नहीं होने देनी है।

बगैर पूरी तरह हाथ धोये देहरी लांघ कर पड़ौसी के घर में सुब्बाराव ऐसा घुस गये मानों कमान से छूटे तीर हो।

'जय तेलुगूदेशम! यहाँ हत्याएँ आत्म हत्याएँ नहीं होने दूँगा! तुम्हारी बहू के खिलाफ जो भी घटना घटे तो...!' कहते हुए सुब्बाराव गरज पड़े और सास के हाथ में जो बेलन था उसे छीन लिया।

'मेरे लाडले सुब्बाराव, बहू कौन है? मेरा लड़का अभी अविवाहित ही है न! अरे, पगले! पड़ोस में रहते तुम इतना भी नहीं जानते क्या?' बुढ़िया भी चिल्लायी।

प्रजा सेवक सुब्बाराव मुँह बाये खड़े हो गये और कहा, 'तब तो....तब...तो... पेट्रोल....किरोसिन.. जलाना....क्यों कह रहे हैं?'

तुम ही बताओ बेटा, इसे जलाना है या नहीं! मैंने कहा, 'बेटी, पास के थियेटर में एन. टी. की पुरानी फिल्म चल रही है जायेंगे', लेकिन यह कहती है, 'नहीं... नहीं...दूर पर अमुक थियेटर में अमिताव बच्चन की फिलम खेल रही है, जायेंगे!' इतनी दूर जाने के लिए ऑटो के लिए कितने पैसे खर्च करना पड़ता है! यह सब अनावश्यक खर्च है न बेटा! इस के अलावा अकाल भी पड़ा है, अब बताओ-इसे जला देना है या नहीं?' बुढ़िया उदास हो कर बोली।

सुब्बाराव चौंक पड़े और कहा, 'जी हाँ, जरूर जला देना है! आप का जो सिनी सामाजिक चैतन्य है, वह आप की लड़की को न होना तेलुगू जाति के लिए ही अपमानजनक है'।

सुब्बाराव उस घर से बाहर आये।

सुब्बाराव अपना घर लौट रहे थे कि वेंकय्या ने आवाज दी और पूछा, 'क्यों जनाब! चुनावों में तुम्हारी बात के मुताबिक हम ने अपने मत दिये. उस के बाद तुम तो हमें बिलकुल भूल गये।

वेंकय्या के घर में अक्षरशः छः मत हैं, उनमें से चार उनकी वालिग लड़कियों के हैं, सुब्बाराव ने यह प्रतिज्ञा की थी कि दहेज-प्रथा पर पेट्रोल उड़ेल कर बीच बाजार में जला डालेंगे। उस प्रतिज्ञा से प्रभावित हो कर वेंकय्या ने अपने सारे वोट सुब्बाराव की पार्टी के उम्मीदवार को डाल दिये।

'मैं मानता हूँ कि आप की बात तो सही है, मगर दहेज–प्रथा को जला देने में जरा दिक्कत है, आप जानते ही हैं कि पेट्रोल का भाव असीमित बढ़ गया है। इसलिए वह अब हमारी पहुँच के बाहर है. पेट्रोल के बिना दहेज-प्रथा को कैसे जलाया जा सकता है ?'

'जलाने की बात तो छोड़ दो। हमारी गली में बिजली की बत्तियाँ बहुत दिनों से नहीं जल रही हैं, कम से कम इन्हें जलाने की व्यवस्था करो बाबू !' वेंकय्याजी ने हाथ मलते हुए कहा।

'बत्तियाँ नहीं जलती क्या ? उन पर मेरा ध्यान ही नहीं रहा जी ! शायद हमारी सरकार बिजली की किफायत करती होगी। मैं उस की जानकारी प्राप्त करूँगा कि बत्तियाँ क्यों नहीं जल रही हैं!' सुब्बाराव ने भी हाथ मलते हुए कहा।

'परसों की बात है बाबू ! मेरी बड़ी लड़की जरा दिन ढल जाने के बाद घर आ रही थी कि गली के उस मोड़ पर किसी पियक्कड़ ने गाली दी और हाथ भी बढ़ाया। गनीमत है कि उस का हाथ मेरी लड़की को नहीं लगा। जो भी हो हमारे (तुम्हारे) रामराज्य में ऐसे असंगत कार्य का होना संगत है क्या ?' वेंकय्या ने हाथ मलना छोड़ कर बाल नोंचते हुए निवेदन किया।

'राम राज्य में पियक्कड़ कीचक राजा कहाँ से आये ? हद हो गयी, उन कीचकों से निवटने का जिम्मा मुझ पर रहने दीजिए, अब आप को डरने की जरूरत नहीं है', वेंकय्या ने सीना फुला कर कहा। दूसरे ही क्षण पूछा, 'मेरा संदेह है, आप की लड़की अंधेरे में क्यों आती थी ?'

'क्या करना है बेटा ? टाइप राईटिंग और शार्टहेंड सीखे बिना नौकरी नहीं मिलती न ! इसलिए कालेज छोड़ने के बाद वहाँ प्राइवेट विद्यालय जाती है। वहाँ से आने में देरी होती है,' श्रीमती वेंकय्या ने हस्तक्षेप करते हुए कहा।

शाम को सूरज के डूबने के पहले ही खाना खा कर सुब्बाराव गली के उस मोड़ पर गये जहाँ बिजली की बत्तियाँ नहीं जलती थीं। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि वेंकय्या की बात सच है। उस अंधेरी गली में खुद उसे डर लगने लगा। यह सोच कर कि बेचारी लड़कियाँ ! इन अंधेरी गलियों में कैसे विचरण कर रही होंगी, सुब्बाराव दुःखी हो गये।

पियक्कड़ गुंडों के चंगुल से तेलुगू महिला मणियों को बचाने के उद्देश्य से सुब्बाराव एक कोने में छिप कर उन दुश्शासनों की प्रतीक्षा करते रहे।

पेट भर खाने के कारण सुब्बाराव थोड़ी देर में ऊंघने लगे। इतने में चूड़ियों की खनक सुनाई पड़ी तो आँखें मल कर सुब्बाराव ने उस ओर नजर दौड़ाई जिस ओर

मे चूड़ियों की खनक सुनाई पड़ी थी। उन्होंने देखा कि मुँह अंधेरे में दूर पर वेंकय्याजी के छः बोटों में से बड़े दो बोट मंद गमन से आ रहे हैं। एक लड़की की बगल में पुस्तकों का गट्ठा है तो दूसरी के कंधे से बंगाली बैग लटक रही है। उन के पीछे थोड़ी दूर पर दो युवक आ रहे हैं। उनका हुलिया देख कर सुब्बाराव को समझने में देर न लगी कि वे युवक जरूर पियक्कड़ हैं।

मन ही मन 'जय तेलुगुदेशम !' कह कर सुब्बाराव एकदम उन पर झपट पड़े।

दोनों लड़कियाँ उछल कर चार कदम पीछे हटीं और चिल्लाने में वर्ल्ड रिकार्ड की सृष्टि की।

'डरो मत ! मैं ही हूँ न ! परसों तुम को रुलाये वे पियक्कड़ कौन हैं ? तुम्हारे पीछे जो कीचक दुश्शासन आ रहे हैं वे ही हैं न ?' कहते हुए सुब्बाराव ने सीना तान कर वीर अभिमन्यु की भाँति फुसफुसाया।

जवाब देने के लिए लड़कियाँ मुँह खोल न पायी थीं कि उक्त कीचक दुश्शासन एकदम सुब्बाराव पर झपट पड़े और उसे ऐसा दबोच लिया मानों बाज ने कबूतर को दबोच लिया हो।

'रास्केल ! अंधेरी गलियों में छिप कर रोज लड़कियों को तू ही डराता है क्या ? हमारे रहते हमारे कालेज की छात्राओं पर हाथ लगाने का साहस कौन कर सकता है ?' कहते हुए एकदम सुब्बाराव का कॉलर पकड़ कर चारों ओर घुमाया... दीवार से लगा कर दबाया...पेट में दो घूँसे और पीठ पर चार घूँसे मार कर...वे नौ दो ग्यारह हो गये।

आधे घंटे के बाद....कमजोरी के कारण आहिस्ता-आहिस्ता उठ रहे सुब्बाराव ने देखा कि आध फर्लांग की दूरी पर दो पुलिस के सिपाही बीड़ियाँ पीते हुए खड़े हैं।

□

फुरसत के दिन

रामदरश मिश्र

मेरा स्वभाव घरेलू है। इसका कारण मेरा स्वभाव तो है ही मेरा पारिवारिक परिवेश भी है। मेरा पारिवारिक परिवेश सदा मेरे अनुकूल रहा। पत्नी का साहचर्य मेरे लिए इतना प्रसन्न रहा कि घर मेरे लिए आश्वस्ति का नाम बन गया। बस मैं अपने काम से बाहर निकलता था और लौट कर घर आ जाता था। घर के लोगों के बीच मुझे अच्छा लगता था। दिन भर भटकना, सम्बन्धों की तलाश करना और विशेष अभिप्राय से सम्बन्ध जोड़ते चलना और समय आने पर उन सम्बन्धों का उपभोग करना मेरे स्वभाव में भी नहीं रहा और ऐसा करने के लिए अलगाव की जो स्थिति होती है वह भी मेरे साथ नहीं थी। घर का गहरा लगाव मुझे भटकने से रोकता था और अपने पास खींच लाता था। यह अच्छा है या बुरा, इससे मैंने भौतिक दृष्टि से क्या खोया क्या पाया, यह अलग सवाल है। जो स्थिति है मैं उसकी बात कर रहा हूं और जहां तक पाने का सवाल है मैंने बहुत पाया। आत्मीयता के ठोस परिवेश में जीकर मैं भीतर से बहुत भरा-पूरा अनुभव करता रहा। आत्मीयता का यही ठोस परिवेश मित्रों के साथ भी रहा। मैंने बहुत सम्बन्ध नहीं बनाए, लेकिन जो बने वे बहुत मूर्त हैं।

लिखने–पढ़ने की प्रवृत्ति के साथ मुझमें घरेलूपन रहा है। गांव में था तो घर-गृहस्थी के काम करता था। माँ के साथ कभी-कभी चक्की पर बैठ जाता था और उसके मना करने पर भी थोड़ी देर तक उसके साथ चक्की चलाता था। माँ का अकेलापन मुझे उसके साथ काम करने के लिए प्रेरित करता था। वह बहुत कर्मठ थी और बिना किसी दीन भाव के बहुत जीवट के साथ अनेक काम सम्पन्न करती थी, उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं थी किन्तु मुझे लगता था कि इसके काम में थोड़ा-थोड़ा हाथ बंटाऊं। मैं बंटा क्या सकता था लेकिन इससे मेरे घरेलूपन की प्रवृत्ति का एक अंदाज मिलता है।

बाहर पढ़ाई के क्रम में अपने हाथ से खाना बनाने और अपने अन्य सारे कार्य करने का अभ्यास बना। यद्यपि मैं निपुण किसी में नहीं हुआ पर निपुणता के लिए नहीं,

काम चलाने के लिए मैं ये सारे काम करता था। शादी के बाद पत्नी के साथ जीवन-यात्रा शुरू हुई। बनारस, बड़ौदा, अहमदाबाद, नवसारी, दिल्ली इस जीवन-यात्रा के पड़ाव हैं। पत्नी भी माँ की तरह बहुत कर्मठ हैं। शादी के समय के नववय से लेकर आज तक वे जीवन कर्म से साहस और उत्साह के साथ जूझती रहीं। कोई भी साथ नहीं था। जब वे बीमार पड़ती थीं या माँ बनती थीं तब भी मेरे सिवा उनकी देखभाल करने वाला कौन था ? मैं चाय बनाता था, दूध गरम करता था जैसा भी बना सकता था खाना बनाता था, घर के और सारे काम करता था उनकी प्रसूती के समय पुष्टई-वुष्टई बना देता था। उनके साथ बैठकर सब्जी काट देना, आलू या मटर छील देना, गेहूं चिनवा देना, उनके बीमार पड़ने पर अंगीठी जला देना आदि कार्यों से कभी-कभी मैं सहज भाव से गुजरता रहा हूं। इसमें मुझे सुख मिलता है, एक ठोस पारिवारिक आत्मीयता मिलती है। मेरे मन में सैद्धान्तिक रूप से स्त्री-पुरुष के कार्यों के सख्त विभाजन का आग्रह कभी नहीं रहा। यह बात दूसरी है कि व्यावहारिक रूप में हम अलग-अलग काम करते हैं किन्तु आवश्यकतावश हम दोनों एक-दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश करते रहते हैं। मैंने कम ही प्रवेश किया किन्तु पत्नी ने अपना सारा काम करते हुए भी अनेक ऐसे कामों का जिम्मा अपने ऊपर उठा लिया जो मुझे करने चाहिए थे। यानि जो काम पुरुषों के होते हैं उन्हें अपना बनाकर वे करती रहीं।

बहुत से पुरुष ऐसे हैं जो वैसे तो बहुत आधुनिक बनते हैं किन्तु पुरुष- संस्कार-वश या आलस्यवश वे छोटे-छोटे कामों के लिए भी पत्नी को आदेश देते रहते हैं। पत्नी उनके समान ही नौकरी करती है और वैसी ही व्यस्त रहती है तो भी वे पानी भी पत्नी से मांगेंगे, चाय पत्नी से मांगेंगे। यह बात तो समझ में आती है कि कुछ मित्र आ गए हों और पत्नी फुरसत में हों तो वह चाय-नाश्ता बनाकर लाये। लेकिन यह कहां का पुरुषार्थ है कि आप खाली बैठे हैं और पत्नी आटा गूंथ रही हैं और आप चिल्ला रहे हैं कि एक कप चाय दे जाओ और तुर्रा यह कि हाथ धोने में उस बेचारी को थोड़ा विलम्ब हो गया है तो आपका खोखला पुरुषोचित दंभ डांट-फटकार में बदल रहा है। पत्नी थकी-हारी ऑफिस से आ रही है और आप पहले के आये हुए हैं या छुट्टी पर हैं या यों ही खाली बैठे हैं और आते ही आदेश शुरू हुआ कि चाय पिलाओ। होना तो यह चाहिए था कि आप अपने लिए खुद चाय बना लेते और पत्नी के आने पर चाय बनाकर उसे पेश करते, फिर देखते-सम्बन्धों में कितना मिठास आ जाता। आपका दंभ भले ही तृप्त न होता, आपको गहरा आंतरिक संतोष मिलता आप सही अर्थों में अपने सहचर होने को प्रमाणित कर पाते। आप अपनी उस मनुष्यता की एक छोटी सी ही सही ठोस पहचान प्रस्तुत कर पाते जिसे अपनी रचनाओं और भाषणों में उगलते रहते हैं।

मैंने कहा न घर से निकलकर दिन भर यहाँ-वहाँ भटकना मुझे रास नहीं आता। मेरा स्वभाव भी नहीं है और स्थितियाँ भी नहीं। मैंने कई लोगों को देखा है कि वे सुबह घर से निकलते हैं तो तब तक घर नहीं लौटते जब तक कि लौटना जरूरी न हो जाए। इसका एक कारण तो समझ में आता रहा कि वे लोग सम्बन्धों की खोज करते रहते हैं, सम्पर्क बनाते रहते हैं पता नहीं कौन सम्पर्क और सम्बन्ध कब उनके काम आ

जाए। लेकिन गहराई में जाने पर ज्ञात होता है कि उनके घर में ऐसा कुछ है ही नहीं जो उन्हें अपनी ओर खींचे बल्कि उल्टा उन्हें अपने से दूर धकेलता रहता है। जो भी हो घर से यह अलगाव उनकी सांसारिक उपलब्धियों का कारण बनता है। प्राप्ति के लिए बाहर सारा जोड़-तोड़ करने का उन्हें अवसर प्रदान करता है। और यह भी विचित्र ही है कि भावात्मक स्तर पर घर से अलगाव झेलते हुए ये महापुरुष स्वार्थ के स्तर पर अपने घर के लिए कितना गहरा लगाव अनुभव करते हैं। दरअसल बाहर-बाहर वे जो सम्बन्ध निर्मित करते हैं उसका लाभ केवल उन्हीं को थोड़े ही होता है, उनके पूरे परिवार को बल्कि परिवार दर परिवार को होता है। सारे मूल्यों को ताक पर रख कर अपने उन परिवारजनों के लिए कुछ भी कर सकते हैं जिनके अलगाव के कारण वे बाहर-बाहर भटकने के लिए अभिशप्त होते हैं। वैसे अपने परिवार के हित के लिए किसे चिंता नहीं होती और कौन चाहता है कि उसके परिवार के लिए कुछ न किया जाए? यह बड़ा स्वाभाविक है और यह स्वाभाविकता की सीमा तक तो ठीक लगता है किन्तु कुछ लोग इसे वीभत्स व्यावसायिक स्तर तक खींच ले जाते हैं। किसी प्रकार उनके परिवार का काम होना ही चाहिए। साम, दाम, दंड, भेद किसी का भी इस्तेमाल करना हो, ये करेंगे और अपने अयोग्य पुत्र-पुत्रियों को योग्य छात्रों की उपेक्षा करवा कर दाखिला दिलायेंगे, प्रथम श्रेणी दिलायेंगे बल्कि टॉप करायेंगे, पहले उन्हें ही नौकरी दिलायेंगे तरक्की दिलायेंगे, पत्नी को लेक्चरर, रीडर, प्रिंसिपल, प्रोफेसर बनवायेंगे और यह सब करने में उन्हें कहीं संकोच नहीं होगा, कहीं भी उनकी आत्मा चरमरायेगी नहीं।

सोचता हूं अच्छा ही हुआ कि मेरे स्वभाव और पारिवारिक स्थितियों ने मुझे घरेलू बना दिया। इससे परिवार के लोगों को जो मिला या नहीं मिला उसके लिए प्रायः वे स्वयं जिम्मेवार हैं, मेरी शरीकता कम से कम रही। न मुझ में दाता का अहंकार जागा न उनमें परावलम्बिता और दीनता का बोध। वे जो कुछ हैं वे स्वयं हैं, आरोपित नहीं है। इससे परिवार में एक सहजता बनी रही और इस सहजता में मैं लगातार भरा-पुरापन अनुभव करता गया।

बच्चे हुए। देशी स्कूलों में पढ़े और वे देशी आचरण ही करते रहे। परिवार विदेशी कृत्रिमता से विकृत नहीं हुआ। मैं इनके सुख-दुख के साथ जुड़ा हुआ चलता रहा। बहुएँ आयीं उनमें भी पारिवारिक सहजता मिली और गृहता का रस और गाढ़ा हो गया। यह भी सुखद संयोग है कि परिवार बिखरा नहीं। हेमंत धारावाहिकों और सिनेमा के क्षेत्र में ज्यादा चमकने के लिए बम्बई जा सकते थे। नहीं गये। दिल्ली में घर का लगाव छोड़कर कैरियर के लिए बम्बई में भटकने की उन्हें कभी इच्छा ही नहीं हुई। अतः वे, उनकी पत्नी माया और तीनों बच्चे वर्षा, स्वाति, और शुभ्रा मेरे साथ ही हैं शशांक की नियुक्ति भारतीय स्टेट बैंक के दिल्ली क्षेत्र में ही हुई। अतः फिलहाल वे भी अपनी पत्नी रीता तथा पुत्र उत्सव के साथ मेरे साथ ही हैं। सौभाग्य से मेरे जामाता अश्विनी तिवारी भी दिल्ली आ गए और पास के मोहल्ले विकासपुरी में रहने लगे और इस प्रकार वे तथा बेटी अंजू और धेवतियाँ मेहा और आशी भी इस परिवार के सदस्य बने हुए हैं। छोटी बेटी स्मिता तो अभी साथ है ही।

वैसे तो बुढ़ापे में अकेलेपन के तमाम किस्से सुने हैं पढ़े हैं, फिल्मों में देखे हैं किन्तु अपने अनेक मित्रों को इस अकेलेपन को झेलते हुए साक्षात् देखा है, अनुभव किया है। लड़के विदेश चले गये या अपने ही देश में यायावरी के नौकरी प्रवाह में बह रहे हैं। लड़कियाँ शादी के बाद अपनी-अपनी ससुराल चली गयीं। बाप ने अपनी नौकरी के दौरान पैसे बचा बचाकर अपने परिवार के लिए जो मकान बनवाया उसमें रहने के लिए वही बच गया– पत्नी के साथ या अकेले। ये बच्चों के साथ रह नहीं सकते क्योंकि कई बच्चे हुए तो वे बारी-बारी से सामान की तरह माँ–बाप को या माँ और बाप को अलग-अलग कुछ दिनों के लिए अपने-अपने घर ले जाते हैं और वहाँ माँ–बाप प्रायः गृहता की उष्मा पाने के स्थान पर ठंडी उपेक्षा ही पाते हैं। इसलिए स्वाभिमानी और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी माँ–बाप प्रायः अकेले ही अपने घर में रहना पसंद करते हैं। उस अकेलेपन का अपना भयानक दंश झेलते हैं किन्तु उसमें वे अपने मन के अनुसार रह तो सकते हैं, बात-बात में बेटे या बहू की चुभती हुई मौन या मुखर नजर तो नहीं झेलनी पड़ती।

सबसे अधिक पीड़ा होती है औरत को। पुरुष तो लोगों से मिलने-जुलने का रास्ता निकालकर अपने अकेलेपन को कम कर लेता है किन्तु औरत कहाँ जाए? दो आदमियों का खाना बनाना है बना लिया, चाय नाश्ता तैयार करना है कर लिया। फिर क्या करे? यदि पढ़ी-लिखी नहीं है और पढ़ी लिखी होने पर भी पढ़ने में रुचि नहीं बन पायी है तो क्या करे? घर की सनसनाती उदासी के बीच बैठी हुई बेटों और पोतों को याद करती रहती हैं। कभी पास पड़ौस में चली जाती है या पास पड़ौस से कोई चली आती है तो कुछ देर के लिए अकेलेपन की सनसनाहट में कोई और राग उभर जाता है।

सबसे भयनाक स्थिति तब होती है जब इन साथियों में से कोई एक साथ छोड़ कर चला जाता है। साथ-साथ लम्बी दूरी पार करते हुए चलने वाले दो सह यात्रियों में से एक एकाएक किसी मोड़ पर रुक जाए तो कैसा लगता होगा? आगे का रास्ता कितना वीरान और थकाऊ लगता होगा और पीछे के रास्ते की सहयात्रा की अनेक स्मृतियाँ इस वीरानगी और थकान को कितना भारी बना जाती होंगी? विवश होकर बचा हुआ यात्री अपने बच्चों के साथ रहने की नियति झेलता है अच्छी भी, बुरी भी। प्रायः बुरी ही। किसी भी स्थिति में इसे झेलने के लिए अभिशप्त हो जाता है और झेलता हुआ अपनी बूढ़ी आँखों में अपने सहयात्री का बिम्ब बार-बार भर लेता है और छिपकर आँसुओं में बहा देता है।

मैं सौभाग्यशाली हूं कि एक बड़े परिवार की गहरी उष्मा के बीच रह रहा हूं। पत्नी अभी पूरे परिवार के लिए उसी तरह सक्रिय हैं जैसे पहले थीं। उनकी सक्रियता किसी मजबूरी के तहत नहीं, उनके स्वभाव के तहत है। सेवा मुक्त होने के बाद मेरी दुनिया कहीं से भी सूनी नहीं हुई है वह बाहर और भीतर से वैसी ही भरी हुई है बल्कि प्रसन्नता का एक नया आयाम जुड़ गया है कि अब यह समय मेरा निहायत अपना है इसे नियोजित करके नहीं, इसमें अपने को खुला छोड़कर जीऊंगा। मेरी सक्रियता

मेरी अपनी है, किसी के द्वारा दी गयी नहीं है, और वह निजी सक्रियता भी इतनी है कि वह कहीं से मुझे खाली होने नहीं देगी।

मैंने कहा न कि मैं इस समय में अपने को खुला छोड़कर जीना चाहता हूँ इसलिए यह दबाव मन पर नहीं पाल रहा हूँ कि इस बचे समय में मुझे कुछ महान कार्य करने हैं, कुछ महान लेखन करना है, नियमित रूप से कुछ लिखते-पढ़ते रहना ही है बल्कि अपने को मुक्त छोड़कर, सोचता हूँ--जो लिखने का मन होगा लिखूंगा, जो पढ़ने का मन होगा पढ़ूंगा नहीं तो बैठा रहूँगा, मित्रों से गपशप करूंगा या कहीं घूमने निकल जाऊँगा, टी. वी. देखूंगा और सबसे बड़ी बात यह है कि घरवालों के साथ बैठकर कहकहे लगाऊंगा और बच्चों के साथ खेलूंगा।

हाँ बच्चों के साथ खेलूंगा। दो छोटे बच्चे उत्तू (उत्सव) और चुक्कू (शुभ्रा) दिन को भरे रहने के लिए पर्याप्त हैं। उत्सव साढ़े तीन साल का है और चुक्कू तीन साल की। यह जोड़ी अद्‌भुत है। दोनों एक दूसरे के बिना रह भी नहीं सकते और जब भिड़ेंगे तो छुड़ाना कठिन हो जाएगा। दोनों समान शब्दों और क्रियाओं को सीखते हैं। एक कुछ कहेगा तो दूसरा वही कहेगा। एक को कुछ कीजिए तो दूसरा भी सामने आकर खड़ा हो जाएगा कि उसके साथ भी वही किया जाए। यहाँ तक कि यदि एक को खेल-खेल में थप्पड़ मार दिया जाए तो दूसरा हँसता हुआ आगे आ जायेगा थप्पड़ खाने के लिए। एक हँसेगा तो दूसरा भी हँसेगा एक के रोने पर दूसरा तो नहीं रोयेगा किन्तु आपस में टकराने के बाद दोनों को साथ रोना पड़ता ही है। उत्सव यानी उत्तू बहुत खुश-दिल है। वह हँसता रहता है। उसे कहता हूँ कि उत्तू हँसता रहता है तो वह देर तक बनावटी हँसी हँसता रहता है बनावटी डकार मारता है बंदूक चलाता है तो मुँह से देर तक गोली चलने की आवाज निकालता है मैं लिखता रहूंगा तो पास आकर बैठ जाएगा और कहेगा लिखूंगा। फिर मेरी तख्ती और पेन लेकर देर तक कुछ गोंजता रहेगा या फिर मेरे नाम की मुहर लेकर कागज पर मारता रहेगा और जब थक जाएगा तो कहेगा 'बस बहुत लिख दिया अब कल।'

वह खूब नाचता है। टी. वी. या रेडियो के गीतों की धुन पर मस्त होकर नाचता है और गीतों की लय के अनुसार नृत्य की गति पेश करता है। चुक्कू भी उसका साथ देती है। उसे घूमने का बड़ा शौक है। खासकर कर जब उसके पिता शशांक या दादी कहीं बाहर निकलती हैं तो वह साथ जाने कीबेहद जिद करता है इसलिए लोगों को छिपकर निकलना पड़ता है। ताऊ हेमंत से भी खूब घुला मिला है। वे तो बाजार जाते हैं तो सभी बच्चों को बटोर कर ले जाते हैं। अपने छोटे चाचा विवेक से भी उसकी खूब पटती है और गहरी छनती है। वह मेरी बड़ी धेवती मेहा से भी बहुत घुला मिला है। मेहा भी इसे बहुत प्यार करती है। वास्तव में दो धेवतियों और तीन पोतियों के बीच यह अकेला लड़का है इसलिए इसे सभी बच्चियाँ चाहती हैं यानी यह सबका लाड़ला है किन्तु मेहा की बात ही और है। जब वह आयेगी तो इससे चिपक जाएगी और यह भी उससे चिपक जायेगा।

उत्तू को फोन करने का बड़ा शौक है। जब विवेक का या ननिहाल से नाना, मामा या मौसियों का फोन आएगा तो जरूर बात करेगा। एक दिन उत्तू कमरे में अकेला था मैं गया तो देखा फोन उठाये था और किसी से बात कर रहा था। मैंने समझा कि किसी का फोन आया होगा और इसने उठा लिया होगा। मैंने उससे फोन ले लिया और पूछा—'किससे बात करनी है।' जवाब आया–'मुझे नहीं बात करनी है आपके यहाँ से ही किसी ने फोन किया था और देर से एक लड़का बोल रहा है।' मैं हँसा और फोन रख दिया और उत्तू महाराज हँसे जा रहे थे।

उत्तू जी बड़ों से जो बात सुनते हैं उसका प्रयोग करते रहते हैं और बड़ा सटीक प्रयोग करते हैं। किसी से नाक कट जायेगी का मुहावरा सुन लिया था। दादी के साथ बाजार जा रहे थे। दादी ने रास्ते में कहा–'बेटे मेरी उंगली पकड़लो।' उत्तू जी बोले 'नहीं अम्मा (वे दादी को अम्मा बोलते हैं) मेरी नाक कट जायेगी।' उत्तू न जाने कितनी-कितनी लीलाएँ करते रहते हैं। और चुक्कू उनका साथ देती रहती है। चुक्कू जब तक खुश रहेगी नहीं तो मामूली सी बात में खड़े गिर पड़ेगी और वहीं हाथ-पाँव मारती हुई चिल्लाती रहेगी किसी की क्या मजाल कि उसे वहाँ से उठा ले। चुक्कू की भी बुद्धि कम प्रखर नहीं है वे भी एक-एक हीरक वाक्य बोलती रहेंगी और अपनी प्रतिभा के चमत्कार पर नाक सिकोड़ कर देर तक नकली हँसी हँसती रहेंगी। अब बताइए जहाँ ऐसे बच्चे हों वहाँ अकेलेपन का सवाल कहाँ उठता है? यों तो ये दोनों बच्चे अकेले ही काफी हैं। घर की रौनक और चहल-पहल बढ़ाने के लिए किन्तु इनके अतिरिक्त वर्षा स्वाती भी तो हैं और दोनों धेवतियाँ (मेहा और आशी) भी तो हैं। इन चारों का अपना अपना रंग है। वर्षा स्वाती से बड़ी है और बड़ी होने का उसका स्वभाव भी है शांत, गम्भीर, पढ़ने लिखने तथा अन्य कार्यों में दत्तचित्त रहने वाली। पुकारो तो बहुत अदब से बोलेगी—जी दादाजी, जी दादी जी और कोई काम कहो तो तत्परता से कर देगी। तन्मय होकर पढ़ती भी है और कलात्मक रुचि भी रखती है अच्छा नृत्य करती है, चित्र बनाती है, बड़े ध्यान से मेरी कविताएँ सुनती है। स्वाती वर्षा की अपेक्षा शरीर से स्वस्थ है वह लापरवाह है, डाँटो तो हँसती रहेगी, अनेक नाटकीय मुद्राएँ बनायेगी, उत्पात करेगी, बहाने बनायेगी। लेकिन इस सारी क्रियाओं के बीच उसका व्यक्तित्व बहुत प्यारा लगता है—गदबदे शरीर में एक गदबदा मन। मन लगाकर कोई काम करें तो उसे पकड़ने में उसे देर नहीं लगेगी। विनोदी अभिनय भी बहुत कुशलता से करती है।

धेवतियों में मेहा बड़ी है। इन दोनों बहनों में प्राय: वही समीकरण है जो दोनों पोतियों में है। मेहा वर्षा की तरह गम्भीर स्वभाव की है वह पढ़ाई से लेकर अन्य कार्यों के प्रति ज्यादा संजीदा है उसकी भी रुचि कलात्मक है।

पढ़ाई के साथ-साथ उसका भी प्रवेश चित्र और नृत्य में है। उसे भी कविता से लगाव है और आशी शरारती है उसकी वाणी, आँखों और क्रिया-कलापों से शरारत बरसती है। हाजिर जवाब है किसी भी बात का फटाक से सटीक उत्तर देती है।

लापरवाह है लेकिन मेधा प्रखर है इसलिए जिस काम में ध्यान केन्द्रित करती है उसे शीघ्र ही कुशलता से सम्पन्न कर लेती है। कलात्मक रुचि इसकी भी है।

जब ये चारों हमारे यहाँ एकत्र हो जाती हैं तब आसमान सिर पर उठा लेती हैं। मेहा और वर्षा की एक जोड़ी बन जाती है स्वाती और आशी की दूसरी जोड़ी। मेहा और वर्षा में जैसे काफी समानताएँ हैं वैसे ही स्वाती और आशी में। स्वाती आशी में एक असमानता यह है कि स्वाती गदबदी है और आशी दुबली पतली और लम्बी। उसकी आँखें भूरी हैं और बहुत जल्दी-जल्दी बोलती हैं यानी मेहा वर्षा मुझसे कोई शिकायत करती हैं तो स्वाती आशी मिलकर उसका प्रतिवाद करती है या इसके उलटा होता है। मेरे लाख मना करने पर भी घर खेल-खिलौनों से भर जाएगा। इनकी सम्मिलित आवाजें आगे से पीछे पीछे से आगे, नीचे से ऊपर ऊपर से नीचे भागती फिरेंगी। डाँटने पर थोड़ी देर के लिए चुप्पी रहेगी। चारों चुप होकर आखों आँखों में मुसकरायेंगी फिर थोड़ा हट कर शुरू हो जायेंगी।

उत्तू नुक्कू सुविधानुसार कभी इस दल के साथ, कभी उस दल के साथ हलचल मचाते भागते रहेंगे। वैसे उत्तू का गहरा सम्बन्ध मेहा से ही है। मेहा आती है तो उसका अधिक समय उत्तू के साथ ही बीतता है अतः उत्तू प्रायः मेहा की टीम के साथ रहता है। इस हलचल और चहल-पहल भरे परिवार में अकेलेपन के फटकने का सवाल ही नहीं पैदा होता। कब दिन बीत जाता है ज्ञात ही नहीं होता। अनेक सांसारिक अनुपलब्धियों के बावजूद परिवार का यह जो भरापुरापन हमें मिला है उससे हम बहुत प्यार करते है। जिस किसी शक्ति के कारण हमें यह वरदान मिला है उसके प्रति हम गहरा आभार व्यक्त करते हैं और उसके प्रति प्रार्थना में झुके हैं कि हमारा यह पारिवारिक सुख बना रहे।

□

निवेदन

पत्र-व्यवहार में ग्राहक संख्या का
उल्लेख अवश्य कीजिए।

आलंबन

हसु याज्ञिक

अनुवाद :

ऊजमशी परमार

'वह जो सामने क्षितिज पर सुनहरा गोल बड़ा सा धब्बा दिखाई देता है, जानते हो वह क्या है ?"

उन्होंने मुझ से पूछा था, मैं भी समझ गया था। सहवास दो-चार दिन का ही था, फिर भी ! प्रत्युत्तर की अपेक्षा से वे नहीं पूछते थे, उनकी बात का वह प्रश्नात्मक प्रारम्भ ही होता है। सूर्य को सिर्फ धब्बा कहते हुए भी वे अनिमेष दृष्टि से डूबते हुए सूर्य को निहारते रहे। दूर तक नीचे फैली हुई उस गहरी वादी की तट भूमि को मैं देखता रहा। लम्बी लकीरों जैसी नदियों का लम्बा-चौड़ा जाल बुना गया हो ऐसा लगता था। एक क्षण के लिये मैं भूल गया, सौन्दर्य सूर्यास्त का नहीं, लेकिन इस बहाने जिसे देखा जाता है वैसी उस धूम्राच्छादित तट भूमि का था !

"कुछ पल के लिये हम अपना सब ज्ञान भुला दें तो ?"

"किसका ज्ञान भुलाने की बात करते हैं आप ?"

"इस सूर्य का ! सिर्फ सूर्य का नहीं, उसके स्वरूप का, स्थिति का भी !"

वे फिर सोचने में उलझ गए, दूर नीचे वादी में ढलान पर एक वृक्ष के नीचे एक युगल बैठा था, स्त्री ने अपना मस्तक पुरुष के कांधे पर रखा हुआ था, अधमूंदी आँखों से वह सूरज को देख रही थी।

हम दोनों ने एक-दूसरे के सामने देखा, और हमारी नजरें फिर से उन लोगों पर जा टिकीं. अलबत्ता उनको वहां से गिरने से बचाने के लिये बीच में एक गड्ढा था और आदमी ने वृक्ष के तने पर आधार भी लिया था, लेकिन स्त्री कुछ ज्यादा ही पसरकर लेटी हुई थी।

"वहाँ से लुढ़क जायगी तो ?" एक सिहरन बदन में फैल गई, "कहीं पागल तो....!" मेरे मुँह से निकल गया।

"तुम्हारी चिन्ता व्यर्थ है।" उन्होंने हँसकर कहा, "तुम्हारी आँखें बावली हो उठी हैं, तुम मन ही मन सोच रहे हो, वे वहाँ से गिर तो नहीं जाएँगे। मुझे भी पहले तुम्हारी तरह व्यर्थ चिन्ता लगी रहती थी। अब तो चिन्ता को जन्म देनेवाली ऐसी घटनाएँ ही मेरे लिये आनन्दप्रद हो गई हैं। जिसकी हम बहुत चिन्ता करते हैं और जिसकी हमें दहशत होती है वैसा ही होता है, फिर भी जीना पड़ता है और चेतन से स्पंदित होकर जीना होता है। उसके लिये तो बस एक ही उपाय है, जो कुछ बहुत ही खराब होने का संभव है, उसके बारे में सोचें और उसके लिये तैयार रहें। जिन्दगी एक रंगोली जैसी है, मुझे पता है एक के बाद एक रखकर सोच-सोच कर सब व्यवस्थित करते हैं, फिर भी जरासी चूक हो जाने पर उसका बोध होने से पहले ही सब उलट-पुलट कर धराशाही हो जाता है, जानते हो ऐसा क्यूँ होता है ?"

"क्यूँ होता है ?"

वे फिर हँसे, "मैं अभी तक पूरी तरह समझ नहीं पाया हूँ, मुझे लगता है, एक तरह से वह अच्छा ही है, पूरी तरह समझा जा सके ऐसा इस विश्व में कुछ है ही नहीं, और शायद होगा भी तो उसका कुछ तात्पर्य नहीं होगा, स्वयं पूर्णता की स्थिति प्राप्त करना आत्मघात करने के बराबर है, फिर भी मैं इसके लिये यत्न कर रहा हूँ। लगता है सफलता नहीं मिलेगी, फिर भी मेरे तरीके से मुझे चलाने में मैं सफल नहीं रहूँगा तब...., नहीं, मैं नहीं जानता कि तब मैं क्या करूँगा....! अरे ! अभी तक वहाँ क्या देख रहे हो ? वह तो निश्चिन्त होकर अपने प्रियतम के आगोश में समर्पित होकर सोई है, उसकी अधमूंदी पलकें डूबते हुए सूर्य को पी रही है और उसका प्रियतम उसकी आँखों को पी रहा है, अब स्वस्थ हो जाओ, उस चिन्ता को झटक डालो, उनकी जीवन्त ताजगी का स्पर्श तुम्हारे चित्त से होने दो, उनके दिलों में कुछ द्रुत गति से चल रहा है, दिलों के उन स्पंदनों का अनुभव मुझे भी हो रहा है।"

अजीब है यह आदमी, मुझे उनको देखना अच्छा लगा, हाथ छाती पे रखकर वे आँखें मूंद चुके थे। उनकी बातों में कोई अनोखा सामर्थ्य महसूस हुआ, अपनी भाव-समाधि समाप्त होते ही वे बोले—

"कुछ अनुभव किया तुमने ? छि....छि...., निरर्थक बहाव में बह गये हो तुम, मेरे प्रति ऐसे महानता-भाव का विचार तुम्हें अपने मनमें लाना नहीं चाहिये। तुमने तो छिलके खाये और गर्भ छोड़ दिया, मुझे भावुक होकर देखने लगे, इसी में हाथ आये सुनहरे पल से वंचित हो गये।"

आकाश में रक्तिमा छाई थी। आगन्तुकों की बातचीत का जो कोलाहल था, वह भी विलीन हो गया था। सभी की आँखें सूर्य की अन्तिम लकीर कब विलीन होती हैं, कैसे लुप्त होती है उसे देखने में लगी हुई थीं। जैसे मौन का एक बहुत बड़ा ज्वार आ गया था।

वह युगल अभी भी उसी भाव-मुद्रा में था। स्त्री ने एक पाँव ऊँचा किया था। अचानक वह उठ बैठी। आदमी ने कपड़े ठीक किये, बालों में उँगलियाँ फेरी और युवती को ढलान चढ़ाने में मदद करने लगा।

सूरज अब डूब चुका था। वे हाँफने लगते थे, कुछ गमगीन भी थे। पास ही खच्चर पर बैठे हुए बच्चे अपने माता-पिता से घर वापस जाने के लिये ज़िद कर रहे थे। आकाश में काला सोग फैल रहा था। नीचे का तट प्रदेश बचे-खुचे तिरछे किरनों के परावर्तन से ज्यादा जगमगा रहा था। आँखें धुम्राच्छादित कवच को भेद कर जमीन के हर टुकड़े को अभी भी अलग-अलग देख सकती थी।

''सुनहरा गोल बब्बा चला गया, किसके आलंबन पर टिका होगा वह ?''

'सूरज को आलंबन तो अपनी गति का और पारस्परिक आकर्षण का, आप तो विज्ञान के विधा पुरुष हैं......'

'नहीं, वह सब मुझे भूल जाना है। सूर्य अपने इर्द गिर्द एक माला का सृजन करता है, उसका अस्तित्व टिकाने के लिए कोई आधार है, वह मैं भूल जाना चाहता हूँ। अब यह कल्पना करनी है कि वह अपने ही आधार पर टिका है, सिर्फ अपने ही आधार पर ! खुद के सिवा दूसरा कोई भी आलंबन नहीं है उसे !'

हम मौन होकर चलते रहे। वे भोजन के पश्चात अपने कमरे में चले गये। मैं भी अपने कमरे में आया। मुझे आज अपने उपन्यास की अंतिम किश्त पूरी करनी थी। बहुत कुछ सोचा था और सोचने के बाद कथाप्रवाह कहां से कहां आ गया था। अंत में सभी सूत्रों को एक साथ पिरो लिया था। यह सब आराम से हो सके, इसीलिए तो सब झंझट छोड़कर यहां आया हुआ था, लेकिन इन महाशय का परिचय होने के बाद तो उनकी ही बातों से दिमाग भर गया था। अब उनसे मुक्ति पाना कठिन था। आज तो किसी भी तरह अंतिम किश्त पूरी किए बिना कोई चारा न था। अलग-अलग सभी सूत्रों को आकार दे सकें, ऐसी किसी अंतिम घटना के बारे में सोचना था। मैं फिर से कुछ किश्तें पढ़ने लगा। अभी एक पन्ना भी नहीं पढ़ा था, कि वे आ गए।

'जरा मेरे कमरे में आओगे ?'

मैं गया। वे चिंतन के गहन बहाव में बह चले थे ऐसा लगा। कुछ देर मैं मौन रहा।

'तुम मुझे बुद्ध के बारे में कुछ कह सकोगे ?'

मैं सोच में पड़ गया, वे मेरी मुश्किल समझ गए।

'मुझे लगता है, मुझे फिर से बुद्ध को प्रबुद्ध अवस्था के बारे में अध्ययन करना जरूरी है। मैंने उनके बारे में पहले पढ़ा था। मुझे उस वक्त अच्छा भी लगा था, लेकिन तब मेरे मन की उचित शिक्षा न होने से ज्यादा गहरे पानी में नहीं उतर सका, आज शायद वह ज्यादा महसूस होगा। कोई मार्गदर्शन उसमें से मिलेगा ऐसा लगता है। तुम्हारे पास ऐसी कोई पुस्तक है ?'

'यहां तो.......!'

'स्वाभाविक है नहीं होगी, और तुम लिखने के लिए अभ्यस्त हो, इसलिए उसके बारे में कह नहीं सकोगे। यहां किसी स्टॉल पर मिलेगा ? शायद वो मुनासिब नहीं होगा। दूसरा एक उपाय है, मैं जानता हूं, तुम लिखने में व्यस्त हो, लेकिन तुम्हारे बिना मेरा काम नहीं चलेगा, मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत है, सिर्फ मेरी बात सुनो।'

पुनः वे सोचने में उलझ गए, फिर खड़े होकर कागज का पुलिन्दा निकाल कर ले आये। एक तस्वीर निकाल कर मुझे दिखाई।

'यह है मीना कोंगरकर। उसके साथ सभी बन्धन मैंने तोड़ दिए, तोड़ने पड़े, फिर भी कुछ खत और फोटो मैंने संभाल कर रखे हैं। मुझे मालूम था कि मेरी, हमारी हर एक की मर्यादा का दबा हुआ ज्वालामुखी कभी एक साथ फटता है, तब उसे संभालना बड़ा ही कठिन होता है। किसी ऐसे कठिन वक्त के लिए ही मैंने यह सब रखा हुआ है।

वह एम.एस.सी. में मेरे साथ थी। मेरे संशोधन कार्य में उससे मुझे काफी मदद मिली थी, तब हम अच्छे दोस्त थे। मुझे पहले से ही भय था कि शादी मुझे रास नहीं आएगी। मुझमें ऐसा कुछ है, जिससे शादी के साथ दूसरे बंधनों को मैं निभा नहीं सकता था. लेकिन उसने बहुत ज़िद की, मुझे भी कुछ सूझता नहीं था। मैंने उसके साथ ज़िन्दगी शुरू की। मुझे अच्छा भी लगा। हमारे दिन बड़े चैन से कट रहे थे, सिर्फ दिन ही नहीं, एक-एक पल भी। मेरा किसी दूसरे काम में मन ही नहीं लगता था। इस कारण वह कभी चिढ़ भी जाती। दूसरे नये संशोधन के लिये उकसाती, लेकिन मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

कहीं कोई दरार पड़ चुकी थी, कहाँ और कैसे वो मुझे बाद में पता चला। मुझे एक अज्ञात पीड़ा लगी हुई थी। मैंने सोचा, यह दरार लम्बी होती जाएगी, फिर उसके बाद ? मैंने अपनी स्थिति का जायजा लिया, मुझे सोचने से भी बहुत तकलीफ हुई। वह चली जाएगी तो ? शायद ना भी चली जाये और हमारे करोड़ों दंपत्ति जैसे निभा लेते हैं उसी तरह वह भी...? मुझे बहुत कष्ट पहुंचा। मैं बहुत स्वाभिमानी था, जिसे अभिमानी कहा जा सके उस हद तक। अभी भी मैं वैसा ही हूं। मुझे उस तरह लाचार होना अच्छा नहीं लगा। मुझे लगा, मुझे अपने में ही मगन होकर जीना सीख लेना चाहिए। मुझमें मीना के बगैर भी मुझ जैसा कुछ होना चाहिए। मैंने सोचा, मुझे जिसकी भीति है, उसी को ही क्यूं ना आश्लेष में बांध लूं ? यह मेरे पांव में देखते हो !'

'हाँ, कोई चोट का निशान है।'

'चोट का नहीं, काटने का निशान है !'

'काटा ? किसने ?'

'मीना ने नहीं !' वे हँसने लगे। 'मैं जब छोटा था तब कुत्ते ने काटा था। हमारे घर के सामने वाले कुत्ते को जंजीर से बांधे रखते। मुझे बहुत डर लगता।

कुत्ता बंधा हुआ होने के बावजूद भी मैं वहां से गुजरते हुए कांपने लगता । मैं तो भैया, उस भीति से परेशान हो गया । एक दिन मैं उधर से गुजर रहा था, तैश में आकर मैंने बंधे हुए उस कुत्ते को लात मारी, और कुत्ते ने मुझे काट लिया, खून बहने लगा, लेकिन उस दिन से भीति से मेरा पिंड छूट गया !

बस ऐसे ही मैंने मीना को भूलने के लिये दूसरा संशोधन शुरू किया, और मेरे दिन-रात उसमें खर्च होने लगे । पूरे बारह साल तक यह अभियान चला । अब वह कचहरी में निर्देशक थी । मैंने उसे पूछा, मैं तुझे मुक्त करना चाहता हूं, मैंने जैसा अनुमान किया था वैसा ही हुआ, वह राजी हो गई । मैं भी उस वक्त तक तो खुश था, लेकिन बाद में मुझे अपनी कमजोरी का अहसास हो गया । मिलना भी अब नहीं होता था, खत-वत भी नहीं । मुझे पता नहीं था कि मैं अपने आपको कुचलता रहा था, अब लगता था कि मुझमें से कुछ हिस्सा टूट चुका है । ऐसा क्यूं होता था ? मैं तो वो ही का वो ही था । कुछ भी तो नहीं बदला था । कितने सालों से– सदियों से हमने अपनी विकृतियां पैदा कर ली हैं, हम में से हमने हम को अलग करके ही समाज व्यवस्था, और संस्कृति के नाम से मिली आज़ादी और निरावलंबी व्यक्तित्व का विनाश रचा है ।

वे हांफने लगे, कुछ देर इधर-उधर टहलने लगे, पानी पिया, अभी तक अस्वस्थता उनके चेहरे पर दिखाई देती थी ।

'यह है शीलू !' उन्होंने दूसरी तस्वीर दिखाई । बड़ी-बड़ी आंखों वाली वह स्त्री देखते ही मन को भा जाए वैसी दर्शनीय थी ।

'वह बहुत भोली थी, दीन-दुनिया का उसे कुछ पता नहीं था । मुझे लगा कि मुझे कहीं किसी में खो जाना है तो यह सर्वथा उचित है उससे मैंने विधिवत शादी की थी । सचमुच मुझे कोई चाहिए था । मीना का अभाव अब मुझे खलता नहीं था, लेकिन उसके बाद मैं सोच में उलझता गया, क्या प्रेम एक ठोस चीज़ है ? या फिर जानवरों की तरह हमें भी अच्छे स्वांग में अपनी इच्छा-पूर्ति ही करनी होती है । मैंने उस स्थिति को भी आखिर स्वीकार लिया, लेकिन अंदर ही अंदर मंथन तो चलता ही रहा । शील के प्रति मेरी चाह उस स्थिति में भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई थी, लेकिन वह सुख भी ज्यादा नहीं टिक सका । वह अचानक मृत्यु की गोद में चली गई ।

मैं कैसा हो गया था ? मुझे कुछ खास सदमा नहीं लगा । मैंने वेदान्त की कितनी ही पुस्तकें पढ़ी, उनमें रत रहा । संशोधन के लिये विद्यार्थी जुटाता रहा । पिछले एक साल से निवृत्त हुआ हूं—

सोचा था, पूरे छः महीने तक पढ़ता ही रहूंगा, सो पढ़ रहा हूं, लेकिन अब दरार फिर बड़ी होती जा रही है, यह कैसी दरार है जो कभी भरी नहीं जा सकती ?

मनुष्य अपने अंदर अधूरा क्यों है ? हमें अपनी प्रतीति के लिए बाहर का प्रमाण क्यूं चाहिए ? मीनू और शीलू पुनः मेरे भीतर जाग उठी हैं । मुझे कोई न कोई अभी और इसी वक्त चाहिए । ज्यादा नहीं तो कम-अज़-कम एक संतान ही होती, लेकिन ऐसा

भी क्या ? तुम कहते हो अन्योन्य के प्रति आकर्षण से अवकाश में सभी पदार्थ टिके हुए हैं, लेकिन भावात्मक विश्व में भी क्या ऐसा परावलंबन जरूरी है ? मैंने जीवन में बड़ी से बड़ी शिकस्तों की चोटें खाई हुई हैं। अभी हाल ही में देखो, मुझे यह सब कहना पड़ रहा है। तुम्हें यानि.जो मैं नहीं हूं उसे ! ऐसा क्यूं ? मैं मुझ में ही क्यों नहीं समा सकता ? मुझे तो स्व-पर्याप्त स्थिति चाहिए, जो मुझ में से ही अंकुर की तरह फूटे और मुझ में ही विलीन हो. ऐसी वृहद् अवस्था चाहिए मुझे ! तुम जा सकते हो। मेहरबानी करके मुझे अकेला छोड़ दीजिए, नितांत अकेला !'

मैं चला आया, सुबह में किसी ने मुझे जगाया, जगाना पड़ा, क्यों कि उस सुरा महाशय ने आत्म-विलोपन करके स्व-पर्याप्त अवस्था प्राप्त कर ली थी !!

□

मेरा घर

उमेश अपराधी

इस कहानी को मैं प्रथम पुरुष में कहना चाहता था। लेकिन लोग अपना रोना मानते और कहानी की कमजोरी इसलिए यह अब मेरे घर की कहानी नहीं रही मेरे मित्र के घर की कहानी है। मित्र भी ऐसा जिसे मैं दूसरा नहीं कह सकता क्योंकि इस घर में उससे ज्यादा भाव और संवेदनाएं मेरी हैं।

संक्षेप में पहले भी और अब भी यह कहानी मेरे घर की ही है।

जयपुर में सिंधी कैम्प के पास रहते हैं मेरे मित्र। पुरुष नाम है उनका। उम्र होगी कोई पचास के ऊपर। लगभग बाल सफेद। पुरखे आकर बस गये थे किसी गाँव से उनके। तब से जयपुर में ही रहते हैं।

पुरुष की नौकरी अब कोई दो चार साल की ही और होगी।

'सेवा निवृत्ति के बाद क्या करोगे भाई ?' एक बार मैंने पुरुष से यूं ही पूछ लिया।

'चाहता तो यह था कि कहीं दूर प्रकृति की रमणीक स्थली में जाकर आध्यात्मिक उन्नति का कोई रास्ता खोजूं। पर तुम जानते हो कि कंधे का सारा का सारा बोझ अभी तक यूँ ही रखा हुआ है। ऐसे में वन की शरण की बात करना लोगों की भाषा में पलायन ही होगा' पुरुष बोला।

वास्तव में मैं जानता हूं कि पुरुष की जिम्मेदारी अभी ज्यों की त्यों ही रखी हुई है। बड़ा बच्चा मात्र बी. ए. पास कर पाया है। छोटा सीनियर हायर सैकेण्डरी में है। लड़की जरूर एम. ए. में पहुंच गई है,—पर उससे क्या होता है? सभी तो बेरोजगार हैं सभी तो बिना शादी हुए रखे हैं।

'जहां तक जिम्मेदारी की बात है भाई साहब घर गिरिस्थी में यही तो जिम्मेदारी होती है कि बच्चे बच्ची पढ़ लिख जायें, रोजगार पकड़ लें, और फिर उनके हाथ पीले हो जायें'।

एक बार किसी दूसरे सन्दर्भ में पुरुष की पत्नी वाचा ने मुझसे यही बात कही थी।

तब से पुरुष के घर के बारे में मैं इसी प्रकार से सोचता हूं। दूसरे प्रकार से भी सोच सकता हूं– लेकिन क्यों सोचूं। जब इसी सोच में वाचा और पुरुष अपना भला मानते हैं तो मैं अपना अलग सोच कर उनके भले में क्यों बाधा बनूं ? वाचा का जहां तक सोच है वह मध्यम दर्जे की औरत का सोच है। मैंने उसके नाम में एक अक्षर अपनी तरफ से और जोड़ रखा है मैं उसे सिर्फ वाचा नहीं कहता वाचाल कहता हूं। वह है भी वाचाल। इस बात को स्वयं पुरुष भी स्वीकार करते हैं। उत्तर प्रदेश की पैदा है वाचा। राजस्थान में तो आम राय यही है कि उत्तर प्रदेश का आदमी राजस्थान के मुकाबले ज्यादा ही चतुर चालाक है। इसलिए पुरुष का पूरा परिवार मेरे वाचाल कहने का कोई बुरा नहीं मानता। उल्टे स्वीकार करता है। स्वयं वाचा कहती है—

'वाचाल नहीं होती तो कोई टिकने देता मुझे इस घर में भाई साहब !'

'हां, हां, बस करो, बस करो, मैं तुम्हारी बात में सहमत हूं; अब इससे आगे तुम पुरुष की गलतियां गिनाओगी फिर उसके बाप की गलतियां, फिर उसकी मां की, फिर न जाने कौन कौन की............

और मैं वाचा की वाचाल जीभ को दूसरी तरफ मोड़ देता हूं।

पुरुष स्वीकार करता है कि वाचाल उसके ऊपर बहुत ज्यादा हावी है। क्या करे ? मजबूरी है। गिरिस्थी चलानी है तो औरतों की यह कमजोरी तो भोगनी पड़ेगी ही ? पुरुष तो बहुत सारी मनोविज्ञान की बातें बताता है औरतों के विषय में; कि कितनी अधीर होती हैं औरतें। कितनी स्वार्थी होती है, कितनी ईर्ष्यालु और झगड़ालू कि बस कुछ पूछो मत। लेकिन तभी पुरुष की लड़की बीच में आ जाती है—

'आप दोनों आर्थोडैक्स—जब देखो तब पुरानी घिसी पिटी बातें दुहराते रहते हैं। इक्कीसवीं सदी में नारी समानता, नारी स्वतंत्रता, पुरुष नारी अभेद को तो भूल ही जाते हैं।

'लेकिन बेटा ! मनोविज्ञान कहता है कि जिमि स्वतंत्र होंय बिगरहिं नारी,— पुरुष तर्क देता है तो बेटी कहती है।

'तुम्हें रामायण के अलावा और आता ही क्या है?'

पुरुष और उसकी लड़की माया के बीच तभी मुझे आना पड़ता है। मैं नहीं चाहता कि बात का बतंगड़ बन जाये और दोनों बाप बेटी का मन कहीं खट्टा हो जाए। इसलिए कहता हूं।

'ऐसा नहीं कहो बेटे ! कि रामायण के अलावा तुम्हें आता ही क्या है ? तुम्हें पता है तुम्हारे पिता कोई गाँव के साधारण पढ़े लिखे मध्यम श्रेणी के आदमी नहीं है। बनारस विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट लिया है उन्होंने। फिर कोई देहात की धूल भी नहीं फांकी हैं इन्होंने। तुम जिस इक्कीसवीं सदी के विकसित राष्ट्रों की बात अखबारों में पढ़-पढ़ कर इनसे बहस करने पर उतर आती हो वे राष्ट्र इन्होंने स्वयं घूम कर देखे हैं। उनकी अच्छाई बुराई दोनों अपनी आंखों से देखी हैं इन्होंने।'

तो माया चुप हो जाती है। वाकई में मैं महसूस करता हूं कि यदि इतना अगाध ज्ञान और लम्बा अनुभव पुरुष को नहीं होता तो पता नहीं ये लड़के लड़कियां इनको घर में टिकने देते भी या नहीं।

कि तभी बड़ा लड़का विकल आ जाता है।

विकल के साथ उसका दोस्त है कुमार। दोनों सीधे अंदर चले जाते हैं।

'देखा ! कितने दर्प पाल रखे हैं इन लड़कों ने।' पुरुष मुझसे बोले।

'छोड़ो यार ! समय का प्रभाव है, अंधी उम्र है, थपेड़े खायेंगे तो होश ठिकाने आ जायेंगे। मैंने कहा।

'वह तो अभी भी हो रहा है लेकिन अभी होश ठिकाने कहां है ?'

'कैसे हो रहा है'— मैं चौंका।

'यह जो लड़का आया है ना विकल के साथ। खूब सारी ठोकर खा रहा है। पर देखो दर्प है कि उल्टा ज्यादा ही रंग दिखाता जा रहा है।'

'कौन है यह ?' मैंने पूछा।

'कोई कोटा जिले के किसी गांव से भाग कर आया था यह लड़का। भूखा प्यासा। दीन हीन। पता नहीं भटकते भटकते भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के दफ्तर में थोड़ा बहुत रोजगार मिला कुछ दिन वहां काम किया। फिर पार्टी के अखबार में कुछ मदद की प्रूफ ब्रूफ देखे। बस तभी से अपने को महान विचारक, क्रांतिकारी और न जाने क्या क्या समझने लगा। कुल जमा दसवीं पास। लेख देखो तो साफ और शुद्धता का नाम निशान नहीं। पर बातें देखो तो कितनी चुपड़ी और पालिशदार...आह! यही सिखाया हमको हमारी कम्यूनिस्ट पार्टियों ने...

'पुरुष ! बात पार्टियों की नहीं हो रही थी; इस लड़के की हो रही थी, उसे पूरी करो' मैंने कहा।

'वही तो मैं कह रहा हूं। आदमी को कौन, कब, कैसे बिगाड़ देता है...पर तुम न सुनना चाहो तो मत सुनो। मैं असल बात पर आ जाता हूं। जयपुर में जैसे तैसे दुखी सुखी दिन काट कर इस लड़के ने यहां एक गरीब परिवार की लड़की से लव मैरिज कर ली। दोनों काम हो गये। बेटी वाले के पास शादी का जुगाड़ नहीं था, और लड़के ने रस्म तोड़ कर, संस्कृति तोड़ कर प्रोग्रेसिव होने का प्रमाण पत्र ले लिया। अब तो मिजाज और भी आकाश छूने लगे......

'अब क्या स्थिति है यह बताओ.......' मैं बीच में टोकता हूं।

'कोई कर्जा से मशीन खरीदी थी, उसका लम्बा चौड़ा कर्जा है। बीबी प्राइवेट स्कूल में मास्टरी करके बच्चे पाल रही है। दसवीं पढ़ी बीबी और क्या कर सकती थी ?.......इतने में विकल और उसका दोस्त अंदर से बाहर आने को होते हैं तो मैं इशारे से पुरुष को चुप कर देता हूं।

'कहां जा रहे हो विकल ?' मैं विकल से पूछ लेता हूँ।

विकल से पहले ही उसका साथी बोल पड़ता है।

'बस जी ! कॉफी हाउस तक !'

'कोई खास बात है–कॉफी हाउस में ?'–मैंने पूछा।

'जी ! एक्चुअल में खास बात तो क्या, हम लोग एक अखबार निकालने जा रहे हैं तो सभी कामरेड आज मीटिंग लेंगें और कुछ डिसीजन करेंगे'।

'अच्छा ! अच्छा !! बहुत अच्छा काम है। क्या करते हो तुम ?' मैंने पूछा।

'आपको हमारा काम अच्छा लगा इसके लिए धन्यवाद ! मैं तो बस यूं ही। लिखता पढ़ता हूं। अक्सर कॉफी हाउस में मेरा बैठना उठना है। आप भी हमारी मीटिंग में आइये और हम लोगों को सुनिये......

'आयेंगे ...जरूर आयेंगे......मैं कहकर अपनी घड़ी देखने लग जाता हूं। विकल इतने में चुपचाप उस लड़के को लेकर खिसक लेता है।

'देख लिया महान विचारक, क्रांतिकारी का नजारा ! कमी रह गई हो तो कॉफी हाउस में जाकर इन लोगों को और सुन लीजिये.......

मैं और पुरुष दोनों काफी देर तक ठठा कर हंसते रहते हैं।

तभी छोटे लड़के आशीष के दो मित्र भीतर के कमरे में से निकल कर बाहर आते हैं। आशीष उन्हें बाहर तक विदा करके आता है। और चुपचाप अपने कमरे में घुस जाता है। मैं पुरुष से पूछता हूं, 'आशीष का कैसा चल रहा है ?'

'ठीक है। जैसा सबका चल रहा है वैसा ही... ....

'क्या मतलब ? क्या तुम आजकल बहुत निराशावादी हो गये हो ?' मैं पुरुष को टोकता हूं।

'नहीं नहीं ! निराशावादी नहीं ! मुझे कहीं कोई किरण दिखाई नहीं पड़ती उमेश। आशीष को सुनो ! इसको साहित्य का रुझान है। अच्छा है। साहित्य तो बहुत ऊंची चीज है, तुम खुद साहित्यकार हो। लेकिन जिस तौर तरीके के ये साहित्यकार हैं– वह कोई अच्छी बात नहीं है। इसके ज्यादातर साहित्यकार साथी इसी जुगाड़ में लगे रहते हैं कि आकाशवाणी और टी वी. प्रोग्राम इनको ज्यादा से ज्यादा मिलें।

''पुरुष ! हर रचना अपना प्रकाशन प्रसारण तो चाहेगी ही'... मैं बीच में बात काटता हूं।

'हां हां भई ! लेकिन रचना अपनी कसौटी पर तो खरी होनी चाहिए ना ? जो प्रबंध कुछ नहीं आदर ही– सो श्रम वादि बाल कवि कर हीं। यानी जिस रचना को कुछ लोग, विद्वान लोग न सराहें वह बाल कवियों का रेत का घर बना कर खेलना मात्र नहीं है क्या ?

सो, तो है'......मैं कहता हूं।

'फिर रात दिन छपने का जुगाड़, प्रसारण का जुगाड़, संपादकों, कार्यक्रम अधिकारियों को दारू पिला कर उनकी प्रशंसा कर के उन्हें खुश करने का जुगाड़, क्या कोई अच्छी बात है ?

'यह तो नैतिक चरित्र की बात है-- और पुरुष तुम जानते हो इस देश में तो सभी का नैतिक चरित्र गिरा है .....मैं कहता हूं

'हां यह मैं मानता हूं–लेकिन कथ्य के स्तर पर भी इनमें क्या है ? या तो घटिया रोमांस या फिर गरीबी, भुखमरी, अकाल जैसे वामपंथी शब्दों का भुनाने का मायाजाल। क्या रचना में इन दो मूल्यों के अलावा कोई और मूल्य है ही नहीं ? परमार्थ, दया, करुणा, उदारता, मानवता, साहिष्णुता ये सब आज कल के साहित्यकारों में कहीं मिलते हैं ? ना तो रचना के स्तर पर और ना व्यक्तिगत जीवन के स्तर पर भी।'

'लेकिन इतनी सारी उम्मीद साहित्यकार से ही क्यों ? ' मैं प्रश्न करता हूँ।

'इसलिए कि रचना अमर होती है। शब्द ब्रह्म हैं ये मरते नहीं। राजनेताओं की झूठी राजनीति तो उन्हीं के साथ मर जाती है पर साहित्यकार की रचना अमर रहती है। क्या गंदी, खोखली और अनैतिक रचना छोड़ कर हम सारे संसार को दुखी, रुग्ण, और त्रासद नहीं बना रहे ? मैं इन लड़कों को देख रहा हूं,–नशे में रहना, समझते हैं कि कोई बहुत अच्छी रचना को जन्म देना है, फिर गर्ल फ्रेन्ड बनाना। क्या है यह सब। मैं कहता हूं होश में आदमी नहीं है तो क्या रास्ता दिखायेगा। फिर साहित्यकार को तो बहुत अधिक होश रखना चाहिए। और ये हैं कि उल्टा नशे की तरफ भागे चले जा रहे हैं। दारू का नशा, औरत का नशा, कविता का नशा, यह नशा इनको कहां ले जायेगा ? बताओ उमेश। तुम्हीं बताओ ?'

'ठीक है। पुरुष ठीक है। मैं कहता हूँ। तुम हो या मैं सब बुरी तरह मे घिर गये हैं। हमारे घरों में हमारी अब कुछ चलती नहीं। वाचाल औरतें। प्रोग्रेसिव लड़कियां। क्रुद्ध कम्यूनिस्ट लड़के और बेहोश साहित्यकार अल्ट्रा मॉडर्न। यह सब तुमको दुखी कर रहे हैं। लेकिन सम्पूर्ण रूप से सच यह भी नहीं है। इस दुनिया में कम मात्रा में ही सही अभी अच्छे परिवार, सुखी गृहस्थ, सुपात्र संतान और नीति तथा सनातन शाश्वत मूल्यों के लिए प्रतिबद्ध लेखक भी मौजूद हैं। प्रयत्न करो पुरुष कि धीरे धीरे ही सही यह दुनिया सुख, शांति और सच्चरित्र की ओर बढ़े। तुम्हारा यह घर आदर्श घर हो और लोग यहां से प्रेरणा प्राप्त करें।

□

अपना घर

संतोष पारीख 'नीरज'

पांच बजे घड़ी का अलारम बजा तो सुनीता ने करवट बदली। उसने आँखें खोल कर देखा, पलंग पर महेश नहीं था। यह देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे याद आया कि वह रात को बड़ी देर से आया था और थोड़ी-सी बातचीत करके सो गया था। वह चादर हटा कर लॉन में गई। वहां महेश कपड़े पहन कर बाहर जाने की तैयारी कर रहा था।

"तुम कहां जा रहे हो ?"

"घूमने। तुम भी चलोगी। जानती हो सुबह-सुबह घूमना बड़ा स्वास्थ्यवर्धक होता है। सारे दोस्त मिल जाते हैं। दिन हंसी-खुशी से कट जाता हैं। मेरा फर्स्ट आने का यही राज है।"

"नहीं, मैं नहीं जा सकती। मुझे नींद आ रही है। तुम जाओ। बॉय।"

"बॉय – बॉय।"

महेश सीढ़ियां उतर कर चला गया। उसके जाने के बाद सावित्री आकर बोली, "क्या भैया, घूमने गये हैं।"

"हां, क्या वे रोज घूमने जाते हैं।"

"हां। पर तुम नहीं गई।"

"नहीं। मुझे रोज जल्दी उठना अच्छा नहीं लगता। मैं तो आठ बजे सो कर उठती हूं।"

इस बीच, पिताजी आ गये।

"क्या बातें हो रही है सावित्री ?"

"कुछ नहीं। वैसे ही गप-शप कर रहे थे।"

"अच्छा – अच्छा।"

उन्होंने पिताजी के चरण स्पर्श किये। वे जीते रहो का आशीर्वाद दे कर चले

गये । उन्होंने उस से कुछ नहीं पूछा । यह देख कर सुनीता क्रोध में आ गई । पर प्रकट में नहीं बोली । अगले दिन जब उसे सावित्री ने जगाया तो उसे बहुत गुस्सा आया । पर बेमन से उठ गई । इस तरह कुछ दिनों तक ऐसा ही चलता रहा ।

एक रोज वह रोज-रोज के जल्दी उठने से तंग आ गई । उस दिन उसे बहुत बुरा लगा । कारण उस दिन उसकी सास से हलकी नोंक-झोंक हो गई थी । रात भर उसे नींद नहीं आई । जब महेश ने उसे जगाया तो वह बोली, "तुम्हारे कपड़े अलमारी में रखे हैं । दिन भर काम करने से कमर दर्द से टूट रही है । सिर पीड़ा से तड़क रहा है । मुझे सोने दो ।"

महेश आगे एक शब्द भी नहीं बोल सका । वह कपड़े पहन कर चला गया । सुनीता ने सोचा –

"यह भी कोई घर है । न देर तक सो सको । न अपनी मरजी से कोई काम कर सको । बस, जब देखो तब सास-ननद हुक्म चलाया करती है । मानो इस घर में मैं एक कैदी हूँ । कैदखाने में कैदी की मरजी नहीं चलती । कल शाम की ही तो बात है । उसका मन पिक्चर देखने को था । शहर के एक टाकीज में मां संतोषी पिक्चर लगी थी । मुहल्ले में उसकी बड़ी चर्चाएँ हो रही थी । मैंने महेश से कहा तो उसने जवाब दिया कि हां चलेंगे । पर मां से पूछ कर । बस, इतना सुनना था कि मुझे गुस्सा आ गया ।" "हर बात मां से ही पूछनी पड़ती है । मैं तुम्हारी कुछ नहीं लगती । इसी-लिये मैं अपनी मरजी से कोई काम नहीं कर सकती ।"

"लेकिन इस में हर्ज ही क्या है । तुम तैयार होओ । मैं मां से पूछ कर आता हूँ ।"

इतना कह कर महेश चला गया और जब लौट कर आया तो वह वैसे ही बैठी हुई थी ।

"चलो, पिक्चर देख आते हैं । मां ने कह दिया है । 'अभी शो छूटने में एक घण्टा शेष है । तब तक तुम तैयार हो जाओ ।"

"पिताजी से भी पूछ आओ ।"

"यह क्या पागलपन है सुनीता । तुम– ।"

"मैं कहती हूँ कि इस तरह कब तक चलेगा । क्या इस घर में मां पिताजी के बगैर कोई काम नहीं हो सकता ।".

"देखो सुनीता । वह मेरी मां है । उससे पूछना मेरा फर्ज है । वैसे भी उन्होंने हमारी आजादी में दखलंदाजी कभी नहीं की । फिर पूछने में हर्ज ही क्या है । उनकी भी इज्जत रह जाती है । आज के दिन के लिए ही तो उस ने मुझे इतना बड़ा किया है ।'

सुनीता बोली–– 'कान खोल कर सुन लो । अब मैं इस घर में नहीं रह सकती ।'

'तुम्हारे कहने का क्या अर्थ है । सुनीता ।' 'अर्थ साफ है । मैं अब इस घर में नहीं रहूंगी । यहां मेरा दम घुटता है । हम अलग मकान लेकर रहेंगे ।'

'मैं उनका बेटा हूं । मेरा भी उन के प्रति कर्त्तव्य है । तुम्हीं सोचो कि क्या अलग रहना उचित होगा ? लोग कहेंगे कि चार दिन भी हिल मिल कर नहीं रह सके। आते ही बहू ने अलग कर दिया ।'

इतना कह कर महेश बाहर चला गया । सुनीता गुस्से में थी । उसने ठान लिया कि अब अलग ही रहना है । इस घर में कभी नहीं रहना । यह तो कैदखाना है । यहां मेरा दम घुटता है ।

इसी बात को कहते हुये दो महीने बीत गये । इस बीच वह चिड़चिड़ी हो गई। वह अब किसी से कोई बात नहीं करती । सास की बातें उसे बुरी लगती । वह कोई भी काम करने को कहती तो सुनीता बहाना बना कर टाल जाती । कभी-कभी वह चिल्लाने भी लगती । फिर दहाड़े मार कर रो पड़ती । उस के व्यवहार से सभी बड़े दुखी थे । सुनीता के व्यवहार से दुखी होकर सास ने महेश से पूछा— 'आज कल सुनीता बहुत उदास रहती है । उसे कल मायके भेज दे । हो सकता है कि उसे मां की याद आ रही हो ।'

मां की आज्ञा पा कर महेश उसे मायके छोड़ आया । सुनीता अब प्रसन्न थी । उसे प्रसन्नता इस बात को ले कर थी कि अब उस का कैदखाने से छुटकारा हो गया। वरना वह तो घुट-घुट कर जीने को विवश थी । सब की आवभगत से सुनीता बेहद प्रसन्न हुई । उसे छोड़ कर महेश लौट गया । उस के जाने के बाद सुनीता उसी के बारे में सोचने लगी । इस तरह वह उदास हो जाती । उसे उदास होते देख कर मां बड़ी चिंतित हुई । उसने पूछा, 'सुनीता तुम उदास क्यों हो । तुम्हें किस चीज की कमी है । भगवान ने मुझे सब कुछ दे रखा है । लेकिन तुम्हारी उदासी का कारण समझ में नहीं आता । बोलो बेटी । आखिर बात क्या है ?' वह बोली— 'मां अब मैं उस घर में कभी नहीं जाऊँगी । वह घर नहीं । कैदखाना है । वहां मां पिताजी की चलती है । हर काम उन से पूछ कर किया जाता है । मेरा तो कोई महत्व ही नहीं है वहां रहने का ।'

मां बोली— 'छोटी-छोटी बातों में मन को मैला नहीं करना चाहिये । मां पिताजी की बात तुम्हें भी माननी चाहिये । शादी के बाद अब तेरा वही घर है । इस घर से कोई वास्ता नहीं । मां- पिताजी की खूब सेवा करके अपने जीवन को स्वर्ग बनालो बेटी ।'

'मां ।'

'हां सुनीता । मैं सच कह रही हूं ।' 'लेकिन यह मुझ से नहीं हो सकता ।' मां ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और अपने काम में लग गई । सुनीता चुप रही। पर उसने मन से अलग होने की बात नहीं निकाली । एक महीना मायके रहने के बाद वह ससुराल लौटी । लेकिन उसके मन में कसक-सी थी । दूसरे दिन फिर वही जली कटी बातें होने लगी । एक दिन सुनीता बोली-'महेश तुम मेरी बात कान खोल कर

सुनलो कि अब मैं इस घर में नहीं रह सकती। मैं अलग रहना चाहती हूं। तुम्हें जल्दी ही अलग रहने का बंदोबस्त करना चाहिये। वरना तुम मुझे जिंदा नहीं पाओगे।'

सुनीता की धमकी से महेश हिल गया। वह हर समय खोया-खोया सा रहने लगा। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। एक दिन महेश ने मां पिताजी को सारी बात सुना डाली। मां बोली—'बेटा यदि वह अलग ही रहना चाहती है तो अलग ही सही। तुम अलग मकान ले लो। वहां तुम्हारा जीवन सुखी रहेगा। रोज-रोज के झंझट से मुक्ति मिल जायेगी।'

वह बोला–'नहीं मां। यह नहीं हो सकता। मैं आप लोगों को छोड़ कर नहीं जा सकता। आखिर मैं भी तुम्हारी औलाद हूं। तुम ने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया। पढ़ाया–लिखाया। अपने पैरों पर खड़ा किया। और आज तुम से अलग हो जाऊं। नहीं मां। यह मैं कभी नहीं कर सकता।'

मां बोली–'बेटा तुम हमारी सेवा अलग रह कर भी कर सकते हो। बहू सुखी रहे। मैं यही चाहती हूं।'

मां के कहने से वह अलग हो गया। उसने एक कॉलोनी में पांच सौ रुपये प्रति मास किराये पर दो कमरे लिये। कमरों को देख कर सुनीता प्रसन्न हो उठीं। उसने सोचा—'यह मेरा घर है। यहां मेरी चलेगी। देर से सो कर उठूंगी। पास में ही टाकीज है। खूब पिक्चर देखूंगी।' इस तरह उसे कुछ समय बीत गया। इस बीच उसके एक लड़का पैदा हुआ। मां पिताजी दीर्घायु का आर्शीवाद दे कर लौट गये। अब उस का भ्रम टूट गया। वह पहले से भी अधिक व्यस्त रहने लगी। महेश सुबह फेक्ट्री जाता। उसे खाना-नाश्ता देना होता। ये सब काम उसे अकेले ही करने पड़ते। इसीलिए वह सुबह पांच बजे उठ जाती। फिर घर का सारा काम। बच्चे को दूध पिलाना। नहलाना-दुहलाना। कपड़े धोकर इस्त्री करना। इत्यादि।

इस तरह उसे दिन भर ही फुर्सत नहीं मिलती। फुर्सत के समय वह सोचकर उदास हो जाती। बार-बार वह अपने निर्णय पर पछताती रहती। वह ढ़ेर सारे कामों से तंग आ गई। उधर महेश भी अलग होने के कारण उदास था। उसे अपनी औलाद की भी खुशी नहीं हुई। वह सुनीता से मन लगाकर बात नहीं करता। एक दिन उसने घूमने की बात कहने की सोची। किंतु न जाने क्यों होठों पर ही ठहर गई। अब तो मैं अपने घर में थी। फिर यह कैसा अकेलापन। लगता है मैंने अलग रह कर अच्छा नहीं किया।

एक दिन उसे बुखार हो आया। बदन दर्द से टूटने लगा। ठंड से सारा शरीर कांप उठा। बच्चा अलग पड़ा रो रहा था। मैं उसे दूध पिलाना चाहती, पर मेरा शरीर ही काम नहीं दे रहा था। बच्चे को महेश ने भी चुप करवाना चाहा। पर उसका रोना बंद नहीं हुआ। हार कर वह झुंझला उठा। बुखार दिनोंदिन तेज होता जा रहा था। महेश की छुट्टियां खत्म हो गई थी। सुनीता ने सोचा— 'आज मैं कितनी अकेली हूं। उस दिन जब मुझे बुखार आया था तो सारे दिन मेरे पास कोई न कोई बैठा ही रहता

था। समय-समय पर दवा–दारू पिला दिया करते थे। ननद तो हमेशा पसीना पोंछती रहती थी। और आज मैं कितनी अकेली और असहाय हूं। अपनी इस स्थिति की जिम्मेदार तो मैं स्वयं हूं। उसे आज अलग रहने पर पछतावा हुआ। शाम को महेश जब फेक्ट्री से आया तो उसने कहा, 'महेश, मांजी को ले आओ। बच्चे को संभाल लेगी। घर का सारा काम धूल चाट रहा है।'

वह बोला— 'क्यों, आज तुम्हें अचानक मां की याद कैसे हो आई?'

'बस यूं ही। तुम मां जी को बुलवा लो।'

उसे सुनीता के कथन में आत्मीयता की गंध महसूस हुई। वह मां को लेकर आ गया। सारा घर सन्नाटे में डूबा हुआ था। पल भर में ही चिल्लपों में बदल गया। सुनीता ने मां को देखकर कहा, 'मुझे माफ कर दो मां जी। मुझे बार-बार अपनी गलती का अहसास हुआ। मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार किया, पर आपने कभी बुरा नहीं माना और हमेशा मेरी मदद की। लेकिन अब मैं जान गई हूं कि अपना घर यहां नहीं वहां है। आपके पास है। अब मैं आपके पास ही रहूंगी। इतना कह कर सुनीता रो पड़ी।

सास उसे ढाढ़स बंधाने लगी।

□

ग़ज़ल

ज़हीर कुरेशी

हम अपने मन के मालिक थे, हम बन्धन से दूर रहे,
उर्वशियों की रूप-राशि वाली दुलहन से दूर रहे।

सारी दुनिया को अपना घर मान लिया जिन लोगों ने,
वे सीमाओंवाले........ छोटे घर-आंगन से दूर रहे।

अपने चेहरे की रेखाओं का सच कड़वा लगता है,
इसीलिए वे हरिश्चन्द्र-वंशज 'दर्पन' से दूर रहे।

सन्त-कथाओं तक में चन्दन-वृक्षों से लिपटे विषधर,
वे जाने कैसे विषधर थे, चन्दन-वन से दूर रहे।

हमने कविता और कथा भर में सागर को अनुमाना,
बहुत चाह कर भी, हम सागर के दर्शन से दूर रहे।

वे बचपन में भी बूढ़े थे, यौवन में भी बूढ़े हैं,
बचपन में बचपन से, यौवन में यौवन से दूर रहे।

□

गीत

दूर जाओ ...

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

दूर जाओ दूर जीवन की सिमटती रेख के,
आयु भर मिलती रही उपलब्धि की ओ आहटों
कर रहा अर्पित तुम्हें मैं आज अपने आप को,
लुट गये विश्वास के सीमान्त के ओ संकटों।

दूर जाओ अर्थ देते दीखते संकेत सब,
रह गया जीवन बँधा जिनके मनोरम पाश में।
भूल कर परितृप्ति की फैली अचीन्ही दूरियाँ,
भूल कर सब कुछ तरसती तृप्ति के आभास में।

मत जलो प्रारब्ध की अवसन्न अन्धी कोख में,
भूल कर आकाश कुसुमित दीप ! आभा के धनी।
दूर जाओ ज्योति की कुचली पड़ी आवृत्तियों,
शेष जिसमें मात्र कुंठा है अंधेरे की घनी।

अब न लौटो प्राण आशा की मरी अनुगूंज के,
डूब जाओ इस कठिन निरपेक्ष काल प्रवाह में।
दूर जाओ कल्पना की मिट रही परछाइयों,
अब न फिर दिखना अचीन्ही वंचना की राह में।

दूर जाओ स्वप्न सब दुस्साहसी भवितव्य के,
भोगता मैं रह गया आजन्म जिनको चाव से।
मुक्त होने दो मुझे सम्भाव्यता के मोह से,
व्यर्थ ही खिलते क्षणों के प्रति असह्य घिराव से।

□

दस दोहे : देश के नाम

डॉ. शीलधर सिंह

मूल्य टूटते जा रहे, बनते नए विचार।
दिन-दिन दूषित हो रहे, संसद के आचार।।

०

जाति-धर्म के नाम पर – छिड़ा हुआ है युद्ध।
रोते हैं यह देख कर – हजरत, ईसा, बुद्ध।।

०

छीनाझपटी चल रही, कुर्सी हुई अमोल।
कुर्सी के कारण यहाँ, लोग हुए बेमोल।।

०

तोड़ राष्ट्र की एकता, गरज रहा अलगाव।
डगमग-डगमग कर रही, बीच धार में नाव।।

०

सुनता है कोई नहीं, कहीं किसी की बात।
पसर रही है देश में, अब जंगल की रात।।

०

भैंस हाँक कर ले गया, जबरन लाठी तंत्र।
रहा मूक दर्शक बना, बेचारा जन तंत्र।।

०

तर्क जाल में है फँसी, श्रद्धा की तकदीर।
धूमिल होती जा रही, संस्कृति की तस्वीर।।

०

जनता - जनप्रतिनिधि जहाँ, हो जाते हैं भ्रष्ट।
वहाँ मृत्तिका भोगती, तरह - तरह के कष्ट।।

०

लोक तंत्र सीता पड़ी, शोक तंत्र की छाँह।
अलगावों की वेदना, आतंकों की बाँह।।

०

जातिवाद की जेल में, प्रेम हुआ है बन्द।
शासन कैसे लिख सके, राम राज के छन्द।।

आषाढ़ की पहली-फुहार !

रघुनाथ प्रसाद 'विकल'

कुबड़े-आसमान के/वक्षस्थल से
अठखेलियां करते/काले-मटमैले बादल !
उसे देखकर/मोर नाचने लगे हैं।
हर्ष के उन्माद में/वे
विचित्र-शब्दों में/गा रहे हैं।
और फिर,
उस मेघ की पहली फुहार।
तृषित-धरती पर पड़ रही।
तुहिन-कणोंसी वर्षा की फुहियां
आनन्दमय-वातावरण की सृष्टि कर रही।
धरती मोद मना रही।
तालाब में उठते/भाफसी नरम
धरती का उच्छवास/हर्ष से पगी
सोंधी-सोंधी-गंध/वातावरण में फैल रही।
गर्द-गुब्बारों से मुरझाये/पीले-पत्तों के ओठ पर
सपनीली-मुस्कान छा गयी है।
आन्तरिक-सुख के/ये विविध दृश्य-पट
बड़े सुखद हैं।

□

सुख की अभिव्यक्ति के ढंग
अलग-अलग होते ही हैं।
अपने/आन्तरिक हर्ष की अभिव्यक्ति
पंछी चहचहाकर/भ्रमर गुंजन कर
कोकिला/क्षमायाचना के स्वरों में
कूक कर/और सागर की लहरें
कगारों से टकरा-टकरा कर/करती हैं।
जिन्हें देखकर / यांत्रिक-भाव वाले
मानव का मरु-मन भी/विगत की घाटियों में
घूमना छोड़/वर्तमान के/स्वर्गिक उल्लासों से
भर उठता है/उसकी उदासी का सघन-वन
हरिया उठता है।

दो कविताएं

धूप का चक्रव्यूह

नमोनाथ अवस्थी

शुरू शुरू में लगता है
आकाश बड़ा साफ है
पक्षी घोसलों में अंडे देते हैं
और मौसम जैसे किसी
कोरीस्लेट पर बैठकर लिखना सीख रहा है
परिभाषाएं—
लेकिन
जैसे जैसे बढ़ता है अध्याय
और कथाएं होती हैं आरंभ
धीरे धीरे फैलने लगता है/धूप का चक्रव्यूह
बादल समेटने लगते हैं
अंधियारे के पहाड़
तो मालूम देता है कि
रास्ता बहुत साफ नहीं है
और गुफाओं में कैद कर लिया गया है
कोई महासूर्य
तब हम सभी लोग देखने लगते हैं
दोनों हाथों के ब्रह्मांड को
ब्रह्मांड वह
जिसे पसीने से बनाया जाता है
इतिहास का आधार है जो
और आदमी जिसके पास जाकर
सुस्ताता है।

□

फूटता हुआ दर्द

इस ऊँची गुम्बद वाली मीनार पर
बैठकर तुम डींग हांक रहे हो
मखमल में लिपटा है तुम्हारा शरीर
और भारत के भाग्य को
कागज के आंकड़ों में इकट्ठा करके
उससे हवाई यात्रा के बजट पास करा रहे हो
कल क्या होगा–
पंजाब, तमिल और असम का/
इसकी क्या तुम्हें चिन्ता है ?
हां चिन्ता है बेशक तुम्हें कल की
कि कल तुम्हें उद्घाटन कहां करना है
और कौन से व्यापारी की कौन सी
मिल से रिश्ता जोड़ना है
यह तुम्हें चिन्ता है—
और चिन्ता तो यह भी बड़ी भयानक है
कि देश में अराजकता क्यों फैली है
गरीब शब्द अभी तक जिन्दा क्यों है
और कर्मचारी लोग आन्दोलन
क्यों करते हैं
लेकिन इस ऊँची गुम्बद वाली मीनार पर
बैठे हुए आधे हंस और आधे बगुले
जैसे मेरे देश के कर्णधार
मैं यह नहीं सोच पाता कि
जब तुम मालिक हो तो
गरीब जनता के सामने आकर
अपनी झोली क्यों
फैलाते हो ?

□

दो कविताएँ

डॉ. हरदत्तशर्मा 'सुधांशु'

एक

बढ़ रहे कीटाणु चिन्ता के
हृदय में।
देवि, माँ! तव पाद पद्मों में विनत हूं।
अश्रु अब रुकते नहीं हैं।
नित्य का यह घूम
मेरी दृष्टि का नाशक बनेगा।
कौन आगे?
कौन पीछे?
मैं पड़ा हूँ आँख मींचे।
आज मैं यह सोचता हूँ—
आयु का अर्द्धांश बीता
और केवल एक ही उपलब्धि
हस्तगत हुई है।
क्रोध, गर्जन और तर्जन
अश्रुधारा बन बहे हैं।
अश्रु की भागीरथी ने वास नयनों में किया है।
मैं भगीरथ बन गया हूँ।
सत्य की, विश्वास की इस खोज में मैं
हाय! जीवन भर जला हूं
और जीवन भर जलूँगा।
हृदय की हर सम्पदा कर दी निछावर,
किन्तु, धोखा ही कमाया।
मैं सरलता के शहद को चाटता हुआ
पैदा हुआ था,
और, अब विष चाटता हूँ
और जिन्दा हूं।
नियति के भोग भी तो भोगने हैं। □

दो

मेरी गर्म गर्म साँसों की निरन्तर धधकती भट्ठी
मुझे जला नहीं पाती ।
एक निरन्तर पिघलता लावा
हृदय में सँजोए हूँ ।
नेत्र-ज्योति बुझी नहीं,
पर, खुली आँखों ने
देखने से विद्रोह कर दिया है ।
मैं किसका साथी ?
कौन मेरा साथी ?
ये उबलते प्रश्न बेमौत मर चुके हैं ।
पराजय को अस्वीकार कर आगे बढ़ता मैं
विजय को जीवन भर न पा सका ।
इच्छाओं ने मेरे साथ दगा किया,
ये जन्मते ही मर गई होतीं
तो अच्छा था ।
वाणी का पानी मर चुका,
मौन की चमक
परख रहा हूं ॥

□

सुलग रहे हैं वन-पर्वत

डॉ. रवीन्द्रनाथ सिंह

मानवीय अत्याचारों को
सहते-सहते
क्रोध से अब
सुलग रहे हैं— वन-पर्वत
इस पर हमने कभी सोचा है ?
उनके चतुर्दिक दिखलायी देने वाला धुआं
और कुछ नहीं

उनका क्रोध है
उनके अंगों को काट-काट करके
उन्हें बनाया जा रहा है– विकलांग
और
स्वजनों/सुहृदरों से
किया जा रहा है अलग
अपनी विवशता
निर्ममता पूर्वक अतिशय शोषण
मानव की निरंकुशता/हृदयहीनता पर
उनके अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं
झरनों से
पर्यावरण समायोजन हेतु
इन पर हो रहे अत्याचार/अवैज्ञानिक दोहन का
इतिश्री करना होगा
उनके अश्रुओं को पोंछना होगा
पूरी सुरक्षा करके
क्योंकि
वन–पर्वत हैं
हमारे पोषक, संरक्षक, श्रद्धेय .....
इनकी सुरक्षा है
स्वयं अपनी ही रक्षा ।

□

तीन कविताएँ

शब्द......

हिम्मतलाल त्रिवेदी तरंगी

शब्द..........
एक शक्ति है—
शब्द.........
से उत्पन्न होता है
नाद.........

और नाद ब्रह्म है
माध्यम है.........
अभिव्यक्ति का—
लेकिन..........
सच तो यह है कि—
शब्द का माध्यम
लंगड़ा है.........
शब्द.........
अनुभव जगाने वाला
मात्र संकेत है—
प्रतीक है मात्र—
उसकी..........
नहीं है कोई सामर्थ्य ।
अनुभव हीन शब्द—
आते नहीं है काम
शब्द में चमत्कार,
उद्‌भुत होता है—
शब्दानुभव से ही ।
इसके बिना
शब्द............
वाक् जाल है—
लफ्फाजी है
हे-शब्द की—
अंधी......
उपासना करने वालों—
अनुभव लो—
फिर करो...........
उपासना शब्दों की
दिप्तीत हो जायेंगे,
शब्द..........
दिप्तीत हो जायेंगे ।
शब्द.......... ।

□

चेतावनी के तीर

धर्म निरपेक्षता की,
गलत धारणाओं ने
मेरे धर्म प्राण देश का,
लील लिया है.........
बल... बुद्धि और तेज।
और–पैदा कर दी है—
नपुंसक–सहिष्णुता।
छोड़ रहे हम...... . ..
चेतावनियों के तीर।
जो गुजर जाते हैं..........
शत्रु के सर के ऊपर से—
चेतावनी का............
नया तीर चलते ही—
गूंज उठता है ठहाका.......
शत्रु के खेमे में,
और मिल जाती है पहुंच—
चार पाँच लाशों में।

□

इन्तज़ार

विचार विभिन्नताओं से,
आलोड़ित है मेरा देश,
जिसने कर दिया है जाम—
प्रगति का चक्का...... .. ।
कहते हैं– कुछ स्थितियाँ—
एसीभी होती हैं ....
जिसमें एक जैसे............
विचार जाग उठते हैं
बेसब्री से इन्तजार है मुझको—
उस स्थिति का, उस घड़ी का।

□

दो कविताएँ

उठे हुए हाथों से

राधेश्याम मंजुल

धुएँ ने देर तक
मेरी बातें सुनी
मेरी सांसें गिनी
और मेरे हाथों से
निकलती रही लपटें
धधकते रहे सवाल,
लेकिन यहाँ किसको है
खयाल ?
सबको साँप सूंघ गया है
आदमी स्वार्थ की
बाहों में भूल रहा है।
लुटती रहें बसें
मरते रहें आदमी
सरे आम।
सब अभ्यस्त हो गये हैं।
चीखों, कराहों, को लोग
चाय की घूंट के साथ
पी जाते हैं।
और तनाव को थूक देते हैं
पान की पीक के साथ।
शहर हर रोज
भीग जाता है
अखबार की सुर्खियों से,
टपकते रक्त से,
और मानवता हर रोज
खड़ी-खड़ी देखती रहती है,
पढ़ती रहती है,

चेहरे
शहर में उगे हुए
सन्नाटे का
और मेरे उठे हुए हाथों से
हर रोज
निकलती रहती है
एक धधकती हुई
कविता
और सूरज उस पर हर रोज
कर जाता है
हस्ताक्षर।

□

दर्द के बिरवे

दर्द औरों का पिया
परायों की तरह जिया
और अपना दर्द
शब्दों में बाँट दिया
उनमें से जो
विचारों की आग निकली
उससे,
गीत, ग़ज़ल, और कविता के बिरवे
खड़े हो गये
जिनको हर रोज मैं
वेदनाओं का नीर पिलाता हूं
ताकि वे हरे-भरे हो जायें
और इतने गहरे हो जायें
कि आने जाने वाले लोग आकर
उनकी छाया तले
राहत की साँस ले सकें
और उन्हें अपनापन दे सकें।

□

दो कविताएँ

गर्मी का बिम्ब-विधान

जगदीशचन्द्र शर्मा

गर्मी के दिन
महँगाई - से
बढ़े-चढ़े लगते हैं।
बीत रहीं रातें
फुर्ती से
मानों कहीं जमाखोरी
चीजें गायब कर देती।
0
सूरज तपता
धरती जलती :
लू की लपटें बहुत बिफरतीं।
दिन को जैसे
अग्नि परीक्षा
सता रही है।
रात
बुलबुला है
अशान्ति का,
दिन उगते ही
फट जाता है।
0
दिवस
उग्रवादी-जैसा है,
फैलाता आतंक निरंतर।
डरी हुई हिरनी-सी लगती
रात
यहां मासूम।

□

प्रदूषण

विश्व भर में
आतंकवाद के प्रदूषण ने
मेलमिलाप की शुद्धता को
प्रदूषित करने का
मानो संकल्प लिया है।
आज
पर्यावरण के प्रदूषण से
मुक्ति पाने के लिए
भरसक प्रयत्न किए जारहे हैं।

उनसे भी अधिक
हमें प्रयत्न करने होंगे
अपने अस्तित्व की
अस्मिता बचाने के लिये।
क्योंकि
हमारे अस्तित्व पर ही
पर्यावरण की सार्थकता है और
पर्यावरण पर ही
हमारा अस्तित्व टिका है।

प्रदूषण कैसा भी हो,
वह प्रदूषण है
जो,
शुद्धता को
प्रदूषित किए बिना
नहीं रहता।

□

लेखकों से निवेदन

0 'मधुमती' मासिकी हेतु आपकी मौलिक/अप्रकाशित साहित्यिक रचनाओं का स्वागत है। रचना टाईप की हुई या सुलिखित, सुवाच्य, प्रथम प्रति भेजें। कार्बन या अस्पष्ट हस्तलिखित प्रति कृपया नहीं भेजें।

0 रचना के बारे में निर्णय रचना प्राप्ति से सामान्यतया दो माह में लिया जाकर स्वीकृति से सूचित किया जा सकेगा।

0 जिन रचनाओं के निर्णय की सूचना रचना प्राप्त होने से दो माह में लेखकों के पास नहीं पहुंचेगी उन्हें कृपया अस्वीकृत समझें।

0 अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति संलग्न करना आवश्यक है।

0 जिस रचना सामग्री का हम उपयोग नहीं कर पायेंगे उसे आवश्यक डाक टिकिट लगा लिफाफा साथ में रहने पर वापस किया जा सकेगा।

0 अस्वीकृत रचनाएँ केवल तीन माह तक सुरक्षित रखी जाती हैं। तत्पश्चात उक्त रचना के सम्बन्ध में पत्राचार सम्भव नहीं है।

0 समीक्षा के लिये प्रेषित कृति की कृपया दो प्रतियां भेजें। जिन पुस्तकों की समीक्षा कराना सम्भवनहीं होगा उनकी प्राप्ति स्वीकार की जा सकेगी।

0 पुस्तकों की समीक्षा अकादमी अपने स्तर पर ही करवाती है, पुस्तकों के साथ प्राप्त समीक्षाओं का प्रकाशन सम्भव नहीं है।

भारतीय कविता पर कबीर का प्रभाव

डॉ. नरपतचन्द सिंघवी

सुकरात ने कहा कि जब परमेश्वर को धरती के जीवों से वार्तालाप करना होता है तो वह कवियों की वाणी के माध्यम से बोलता है, अपना दिव्य सन्देश कवि के दिव्य शब्दों में देता है। अक्षर ब्रह्म के परम साधक, युग-पुरुष कबीर पर यह कथन पूर्णतः लागू होता है। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सबकुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने, मध्य युग के स्वतन्त्र विचारक कबीर को भारतीय साहित्य का अप्रतिम व्यक्ति बना दिया है। जननेता कबीर के काव्य में युग के विभिन्न मतवादों के समस्त विरोधी स्वर विचित्र समन्वय के साथ बोलते हैं। कबीर का काव्य जन-भावनाओं की सहज प्रवृत्तियों, परिस्थितियों, विकृतियों और विडम्बनाओं का विशाल शब्द-चित्र है, जीवन शक्ति का अजस्र स्रोत है। काव्य आचरण की पवित्रता का सन्देश लेकर, विश्वव्यापी मानव-धर्म के साधारण नियमों को अपने में सन्निहित करके, जनता के समक्ष आया। उसमें युग-बोध एवं युग-चेतना का व्यापक स्वरूप प्रतिफलित है। धर्म की रूढ़िवादी विचारधारा के विरुद्ध आवाज बुलन्द कर भारतीय जनता को पारस्परिक प्रेम और सद्भावना का सन्देश दिया, मिथ्या आडम्बरों और पाखण्डों को चुनौती दी और त्रस्त-सन्तप्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को विचार करने की शक्ति दी। कबीर के धर्म में मानव-हित का मूल स्रोत विद्यमान है जो युग-युग तक मानव-जीवन में शान्ति और प्रेमरस का संचार करने में समर्थ है। शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक कबीर के काव्य ने भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जन-जीवन का नायकत्व किया।

भावना की अनुभूति से युक्त 'मैं कहता हूं, आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी', उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील स्पर्श करने वाले, मर्यादा के रक्षक, जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज-सुधारक, कारणों से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक-प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि–कबीर का सन्देश पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा, काल और देश की सीमाओं का अतिक्रमण कर भारतीय कविता को प्रभावित करता रहेगा। सहज में आस्था रखने वाले मानववादी व्यक्ति थे कबीर।

उनके विचारों में मानवता के शाश्वत मूल्य और सार्वजनिक मर्यादाएँ निहित हैं। वे अपने लिये नहीं, संसार के लिये रोते और विलाप करते हैं—'दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।' कबीर ने खण्डनात्मक शैली में जो कुछ कहा उसमें मानवतावाद की पुकार है। कबीर समाज की टूटी हुई व्यवस्था को समाप्त कर उसे मानवता के आधार पर नवनिर्मित करना चाहते थे। कबीर ने धर्म और दर्शन को सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं समझा क्योंकि वे धर्म और दर्शन को संकीर्णता से परे रखना चाहते थे। ब्राह्मणों और शूद्रों, हिन्दू और मुसलमानों के बीच की दीवार तोड़कर उन्हें एक परिवार का व्यक्ति घोषित किया। आत्मानुभूत वाणी ही उनके काव्य की सर्वोत्तम निधि है। वाणी के डिक्टेटर ने सम्प्रेषण के लिये शब्दों को तोला संवारा नहीं अपितु जो शब्द जिस रूप में निकल गया, ठीक था। डॉ. हजारीप्रसाद के शब्दों में 'हिन्दी साहित्य के एक हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।' निर्गुण शाखा के प्रवर्तक कबीर—साहित्य, राष्ट्रीयता और विश्व-भ्रातृत्व का सर्वप्रथम और सर्वोत्तम धुरंधर नेता और गुरु हैं, जिसने भारतीय काव्य को कथ्य और शैली, अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों क्षेत्रों में प्रभावित किया। कबीर के काव्य में अनूठा प्रभाव, हृदय की सच्ची प्रेरणा और मर्मस्थल को स्पर्श करने वाली उक्तियां हैं।

अपनी नवीनतम कृति–'सतवाणी' में लब्ध प्रतिष्ठ कवि कन्हैयालाल सेठिया ने आवरण पृष्ठ पर, परम तत्त्व के साधक कबीर के प्रभाव को आज के युग में भी आभार सहित स्वीकारा है—

'चितण रो गैरो कुओ
लियो अलूंच कबीर
'सतवाणी' स्यूं खोलदी
फेर रुझ्योड़ी सीर।'

अक्खड़, फक्कड़, मस्तमौला कबीर के प्रखर और प्रचण्ड व्यक्तित्व ने भारतीय काव्य को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में प्रभावित किया। महान् जनहित की भावना को उसने अपनी वाणी द्वारा मुखरित किया। मध्य युग के विचारकों में कबीर की समदर्शन की भावना विश्व इतिहास में क्रांति अध्याय के पन्ने पर लिखी जायगी। कबीर की वाणी वह अमूल्य सम्पत्ति है जो युग-युग तक मानव के अंधकार पूर्ण मार्ग को प्रकाशमान करती रहेगी, भारतीय कवियों को प्रेरणा देती रहेगी, कवि–मानस को प्रभावित करती रहेगी।

कबीर साहित्य ने एक परम्परा हिन्दी साहित्य को प्रदान की जिसके आधार पर परवर्ती संतों ने अपनी वाणी का प्रसार किया और भारतीय जनता के बीच मिथ्या आडम्बर के विरुद्ध क्रांति को जन्म दिया। कबीर की यह देन भारतीय जन-मानस और काव्य, दोनों क्षेत्रों में सम्मान का विषय है। कबीर की विचारधारा देश के विभिन्न भागों में कुछ-कुछ रूपान्तर के साथ एक लम्बे युग तक चलती गई। विश्व के इतिहास में मानव–कल्याण के लिए किये गए प्रयासों में कबीर का प्रयास एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। कबीर ने अपने त्याग, तपस्या, सदाचार, समता और सद्भावना का वह साम्यवाद, भारतीय साहित्यकारों के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसमें जनहित की भावना निहित थी

और थी समूचे मानव-जगत की बहिर तथा आन्तरिक शांति। जहाँ तक जनहित के क्षेत्र में समता का सम्बंध है, यह तो मध्ययुग के सबसे बड़े जनवादी विचारक कबीर की साधना थी।

सामान्यतया संतमत का विकास उत्तर-प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान में हुआ, फलतः ब्रज, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी तथा राजस्थानी में संत-साहित्य प्रचुर मात्रा में है। रैदास, नानक, व्यास, दादू आदि भक्तिकालीन तथा सुन्दरदास, चरनदास आदि रीतिकालीन कवियों पर कबीर का प्रभाव, उनके नीति और उपदेश के छंदों पर परिलक्षित होता है। कबीर के पदचिह्नों पर तुलसी, रहीम, वृंद ने दोहा छंद में नीति काव्यों की रचना की, दीनदयाल और गिरिधर ने कुण्डलियाँ मे। रैदास, नानक, व्यासजी, दादू के नीति उपदेश के छंदों में कबीर जैसा विद्रोही स्वर नहीं है। पीपा कबीर की आध्यात्मिक उपलब्धियों से प्रभावित हैं। कबीर की भांति रैदास का बल भी कलापक्ष की अपेक्षा प्रतिपाद्य पर अधिक रहा है। नानक के काव्य में कबीर की भांति शात रस की निर्बाध धारा प्रवाहित हुई है। इनके दार्शनिक सिद्धांत कबीर से मिलते-जुलते है, उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों में अभिन्नता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। संत लालदास की विचारधारा कबीर मत से प्रभावित है। दादू पंथ के प्रवर्त्तक संत दादूदयाल ने अपने सिद्धांत-पक्ष का निर्धारण कबीर की रचनाओं को आदर्श मानकर किया है। सुन्दरदास ने कबीर के सिद्धांत का काव्यात्मक प्रतिपादन किया है। पंजाब के कुछ अन्य सिक्ख गुरु-अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव तथा गुजरात के नरसी महता कबीर के कथ्य से प्रभावित हैं। संत-काव्य-धारा के अंतिम कवि तक, कबीर की काव्य दृष्टि, समाज दृष्टि और चिन्तन दृष्टि से प्रभावित हैं। मराठा संतों ने कबीर की परम्परा का पालन करते हुए हिन्दवी में पद लिखे हैं। प्राणनाथ ने हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्म ग्रंथों में मौलिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। पलटूदास की कुण्डलियाँ कबीर की साखियों के आधार पर ही हैं। यारी साहब, दरिया साहब (मारवाड़ वाले तथा बिहार वाले) और गरीबदास के उपदेश, नीति-कथन कबीर से प्रभावित हैं। कबीर की उलटबाँसियों का मारवाड़ के दरिया साहब ने अनुसरण किया। बंगला भाषा में 'उलटा बाऊल' साहित्य की सृष्टि हुई।

रूपकों में कबीर की आत्मा की भाषा प्रकट हुई। परवर्ती संतों ने उसी शैली को अपनाया। संतों के रूपक बड़े यथार्थ और प्रभावशाली बन पड़े है। कबीर की प्रतीक शैली भिन्न रूपों में भारतीय साहित्य में स्थान पाती रही है। कबीर की प्रतीक योजना से केवल यारी साहब आदि संत कवि ही नहीं, आधुनिक काल के बहुत से कवि प्रभावित हुए हैं।

कबीर का रहस्यवाद आधुनिक युग के कवियों का आधार-स्तम्भ है। कबीर के द्वारा ही सर्व प्रथम रहस्यवाद को प्रेम की मधुर भावना प्राप्त होती है। भक्तियुग के पश्चात् रहस्यवाद के दर्शन आधुनिक युग में छायावादी कवियों में होते हैं। महादेवी कबीर के रूपकों एवं प्रतीकों से प्रभावित हैं।

क्या पूजन क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे!

प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन !

0 0 0

आज लघु जीवन किसी
निस्सीम प्रियतम में समाया ।

0 0 0

चित्रित तू, मैं रेखा क्रम
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम
तू असीम, मैं सीमा का भ्रम
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

अद्वैतवादी कबीर के पद रहस्यवादी कवियों के आधार हैं—

जल में कुंभ, कुंभ में जल, है बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ, जल जलहि समाना, इए तथ कथ्यो ज्ञानी ।।

0 0 0

लाली मेरे लाल की, जित देखू तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ।।

अनास्था से पीड़ित इस बीसवीं शताब्दी के महान् युग-पुरुष महात्मा गांधी भी कबीर के जीवन-सिद्धांतों और आध्यात्मिक मान्यताओं से प्रभावित हैं । कबीर के व्यक्तित्व कृतित्व और साधना के प्रभाव का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा ? भारतीय कवि जो गांधीवाद से प्रभावित हैं, निश्चय ही कबीर के अनुगामी हैं । कबीर की वाणी का सांस्कृतिक प्रभाव आज के जनवादी साहित्यकारों पर परिलक्षित होता है । विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर भी कबीर की वाणी से अनुप्राणित होकर विश्व को 'गीताञ्जलि' जैसा अमर ग्रंथ प्रदान कर सके ।

कथनी और करनी की पवित्रता निभाते हुए कबीर ने निष्कर्षतः घोषणा की—

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़िन, ओढ़ि के मैली कीन्ही चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़िन, ज्यों कै त्यों धर दीनी चदरिया ।।

कबीर का स्वतंत्र चिन्तन आज के साहित्यकार को प्रभावित कर, उसका मार्ग प्रशस्त करता रहेगा, यही आज का विश्वास है और कल की आशा है ।

□

समकालीन ललित निबन्ध : एक विहंगम दृष्टि

श्रीमती विमला सिंहल

आधुनिक जगत की विचारधारा से उत्पन्न नूतन भावभंगी के दर्शन कराने में समर्थ ललित निबन्ध विधा को हिन्दी में निबन्धों के अन्तर्गत व्यक्तिगत निबन्ध का एक प्रकार मात्र मानकर अत्यन्त उपेक्षणीय रूप में आंका जाता है। वस्तुतः ललित निबन्ध विधा अपने आप में स्वयंपूर्ण सम्पूर्ण स्वतन्त्र विधा है, जिसे अभी तक कम मान्यता मिली है। यहां ललित शब्द निबन्ध का विशेषण नहीं है सम्पूर्ण बन्धान ही जहां लालित्य पूर्ण है ऐसा अर्थ निहित है ललित निबन्ध संज्ञा में।[1] कुबेरनाथ राय के अनुसार 'ललित निबन्ध की आकृति निबन्ध, व्याख्यान, फंतासी, फीचर लेखन, व्यक्ति चित्रण (पोर्ट्रेट) स्केच, रिपोर्ताज आदि जिस किसी शैली का आश्रय ले सकती है।[2]

ललित निबन्धकार अपने पाठक के बोध को व्यापक करने का उद्देश्य लेकर चलता है तथा अपने सम्पूर्ण चिन्तन मनन और व्यक्तित्व का निचोड़ अपने निबन्धों में प्रस्तुत कर देता है।

जहां अधिकांश समकालीन साहित्य एक उदासी रिक्तता पैदा करता है तथा अनुभव करता है कि साहित्य वह हथियार नहीं है जिससे व्यवस्था को बदला जा सके वहां रचनात्मकता का आश्रय लेकर चलने वाला ललित निबन्ध एक नये आत्मबोध से साक्षात्कार करवाता है क्योंकि यह वास्तव में एक दृष्टिसम्पन्न विधा है। ललित निबन्धों के माध्यम से लेखक हमारी चेतना को मन पवन की नौका पर सवार करवाकर कभी 'छितवन की छांह' के नीचे स्फूर्ति लेने के लिये आमन्त्रण देता है तो कभी 'तमाल के झरोखे' से झांकते हुए लोक चेतना के साथ सम्पर्क कराता है। कभी 'विषाद योग' के माध्यम से युगीन छिन्नमस्ता शिश्नोदर सभ्यता में शाश्वत चिन्तन के सहारे जीने की ललक पैदा करता है कभी 'महाकवि की तर्जनी' से संकेत मिलता है कि वर्तमान के भटके राजनीतिक व्यामोह के युग में काव्य और शास्त्र का राजपथ ही चेतना को स्वस्थ रख सकता है। कभी हमारे सांस्कृतिक शाश्वत बोध के चन्दन के साथ हमारे मन के पानी से सुगन्ध तैयार करने का आयोजन है। शिवप्रसाद सिंह ने भी अपनी मानसी गंगा के अवगाहन से मानुषद्वारे पशुप्रेम से ऊपर मन के माध्यम से ज्ञान के द्वारा आनन्दोपलब्धि

करवाई है और हमारी चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाने का संकल्प लिया है । तो विवेकीराय ने भी 'आम रास्ता नहीं है' कहकर इस विधा की तरफ पाठकों और आलोचकों के रुझान को इंगित करते हैं ।

आज के रुग्ण बुद्धिवादी युग में ये ललित निबन्ध स्वस्थ हवा के झोंके की तरह हैं जो हमें आमन्त्रित करते हैं स्वस्थ बनने के लिए । यह विधा कम रची गई विधा है क्योंकि रचनात्मक गद्य कवियों की कसौटी ही माना गया है 'गद्यं कविनां निकषं वदन्ति' तो कारण है ही वस्तुतः इस विधा में लिखने की अनिवार्यता व्यक्तित्व है । यहां यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि आज का हर विचारक निजी दृष्टिकोणयुक्त विचारधारा सम्पन्न व्यक्तित्व रखता ही हो जरूरी नहीं है । आज अधिकतर व्यक्ति उधार की विचारधारा से काम चलाते हैं । पर ललित निबन्ध में लेखक उधार की विचारधारा से काम नहीं चला सकता और न ही अल्पबोध के आधार पर लेखनी उठा सकता है इसीलिए जहां कहानी, उपन्यास लेखन में एक भीड़ दिखाई देती है ललित निबन्धकार इने गिने हैं ।

ललित निबन्ध में लेखक पाठक के साथ सीधा सवाद स्थापित करता है और उसकी शैलीभंगिमा से हम तुरन्त उसकी पहचान कर सकते हैं कि यह विद्यानिवास मिश्र हैं यह कुबेरनाथ राय, शिवप्रसाद सिंह या विवेकीराय का स्वर है ।

यही दृष्टिबोधसम्पन्न ललित निबन्ध विधा वर्तमान के आलोचकों, पाठकों व अध्यापकों को चुनौती देती है विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में — 'निबन्ध कुछ हिन्दी के अध्यापन में भारी पड़ता है ऐसा हमको लगता है'[३] । तो शिवप्रसादसिंह कहते हैं 'रम्य रम्या का अर्थ रसगुल्ला ही है तो जाहिर है मेरे जैसे देहाती के पास ये चीजें नहीं हैं'[४] । इसी शैली में कुबेरनाथ राय कहते हैं मधुर का मतलब नीमपाक या करेलापाक भी हो सकता है ।[५]

इन लेखकों ने अपने युग की नब्ज को बहुत अच्छी तरह पकड़ा है । डा. प्रभाकर माचवे के शब्दों में 'वे अस्तित्ववाद की गहन निराशाभरी नो एक्जिट वाली विवशता से भी परिचित हैं तो मार्क्सवाद की आर्थिक मजबूरियों से भी । वे सीमाओं को जानकर उनके आरपार देखना चाहते हैं वे शब्दों की माला पिरोने में अटक नहीं गये हैं यही उनकी आधुनिकता है' ।[६] यह बात शिवप्रसादसिंह के सन्दर्भ में कही गई है किन्तु लगभग इन सभी लेखकों पर समान रूप से लागू होती है । इन लेखों का उद्देश्य हमें अपने आप मे अपने परिवेश देश और सांस्कृतिक अस्मिता से सम्पूर्ण रूप में परिचित कराना है । इन लेखकों के इन ललित निबन्धों की सारस्वत यात्रा के माध्यम से हम हमारे देश के पेड़-पौधों, नदी पहाड़ों और सांस्कृतिक गांवों और उनकी आत्मा से परच जाते हैं । हमें इन्सान की सूरत पहचान में आने लगती है तथा हमारी भारतीय संस्कृति का फैलाव द्वीपान्तर तक है यह एहसास जगता है ।

विद्यानिवास मिश्र जो ललित निबन्धकार के रूप में एक विशिष्ट पहचान बन चुके हैं तथा जिनके २० निबन्ध संग्रह प्रकाशित हैं शेफाली झर रही है, गांव का मन, संचारिणी, लागौ रंग हरी, भ्रमरानन्द के पत्र, अंगर की नियति, छितवन की छांह,

कदम की फूली डाल, तुम चंदन हम पानी, आंगन का पंछी और बनजारा मन, मैंने सिल पहुंचाई, साहित्य की चेतना वसन्त आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, परम्परा बन्धन नहीं, कटीले तारों के आर पार, कौन तू फुलवा बीननी हारी, अस्मिता के लिए तथा तमाल के झरोखे से ।

भाषा मर्मज्ञ विद्यानिवास मिश्र जी ने आलोचना व कविता में भी लिखा है किन्तु पूर्ण रूप से अपने आप को अभिव्यक्त ललित निबन्धों में ही किया है । लेखक का सोच सकारात्मक है तथा लेखक ने गांव से अपने को सदा जुड़ा हुआ महसूस किया है और नगरीकरण के बढ़ते प्रभाव से क्षुब्ध उनका चिंतन उनके ललित-निबन्धों में यत्र तत्र सर्वत्र मिलता है । विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की सह विचार-यात्रा हमें धरती के धर्म से अवगत कराती है, लोककथाओं और लोकगीतों के मर्म को सुझाती है । साहित्यकार के रूप में वे सम्पूर्ण अग जग की पीड़ा को अपने में समेट लेना चाहते हैं । उनके चिन्तन का द्वैत और तद्जनित तनाव हमें अनुभूत होता है कि वे पक्षी बनकर आंगन के आस पास चहकना चाहते हैं तो उनका मन बनजारा बनकर भटकना चाहता है । यायावरी वृत्ति के आकर्षण ने उन्हें काफी बोध सम्पन्न बनाया है । वे परंपरा और ट्रेडिशन, इतिहास और इतिवृत, धर्म और रीलिजन व संस्कृति और कल्चर का पुंखानुपुंख विवेचन कर हमारी सम्पूर्ण चेतना को झकझोर देना चाहते हैं तथा हमें आमन्त्रित करते हैं हमें युगीन राजनीतिक, सामाजिक, भाषा विषयक समस्याओं को; जिन पर लेखक ने समय समय पर मंथन किया है; सही परिप्रेक्ष्य में देखें ।

पिछले ४० वर्षों के दौरान लेखक ने जिस राजनीतिक बिखराव, अस्थिरता, उठापटक, विश्व राजनीति के क्षितिज पर उभरा मानव का बौनापन सभी को स्वायत्त किया है तथा सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन ने उसे आंदोलित किया है । इस लेखक की मूल वेदना है मार्क्स और फ्रायड की बजाय हम भारतीय चिंतन की समग्रता को आयत करें । उनकी अकुण्ठ उपपत्ति है कि धर्म विरहित काम और अर्थ हमारे लिए कष्टदायी ही होंगे ।[७] इन्होंने भाषा को संस्कृति का वाहन इसी रूप में माना है । जैसे सामने खड़े लहरदार पेड़ का यदि हमें नाम नहीं पता तो हमारे मन में न भाव जगेगा न चेतना पर यदि नाम 'अशोक' हमें पता है तो उसके साथ हमारी चेतना अपने आप हजारी प्रसाद द्विवेदी की राह चलते हुए अशोक के फूल तक पहुंच जाती है और सम्पूर्ण परिवेश उजागर हो जाता है । यही सांस्कृतिक बोध रचनात्मकता की सृष्टि करता है जो मिश्र जी में मिलता है ।

कुबेरनाथ राय ऐसे लेखक हैं जिन्होंने सिर्फ ललित विधा में ही आत्माभिव्यक्ति की है । इनके बारे में आम धारणा सी बनती है कि बौद्धिकता की आंच ने इनके लालित्य बोध जनित रस को सोख लिया है एक पाठक की प्रतिक्रिया लेखक ने स्वयं उद्धृत की है कि पूरी पुस्तक ही सिर से निकल गई किन्तु जिन्होंने एक बार इनकी 'मन पवन की नौका' की सवारी कर द्वीपान्तर की यात्रा कर ली और ललित निबन्ध के केन्द्रीय विषय के साथ जुड़कर 'दृष्टि अभिसार' का आनन्द ले लिया वह इनके किसी भी निबन्ध को पढ़ने की ललक से विवश हो ही जायेगा । वास्तव में आज का वर्तमान

युग शंका और व्रत की रात्रियों का युग है इनमें सिर्फ हताश होने से या बाममार्ग के सहभागी बनकर तथा घिनौनी राजनीति का चारण बनने से काम नहीं चलेगा। वर्तमान में साहित्यकार को सजग होकर प्रजागरण (सावधान जागरण) करना है और भटके युगबोध को सही मार्ग पर लाना है।[८] इसी दायित्वबोध ने उन्हें गुरु गंभीर बनाया है। उनकी वैचारिक गंभीरता में कहीं भी भाषा जनित कृत्रिमता की कठिनाई नहीं है न ही कहीं भी ओढ़े हुए विचारोंजन्य जटिलता है। लेखक ने प्रत्येक तथ्य के केन्द्र को हृदयंगम कर उसे अपनी विशिष्ट भंगिमा प्रदान करने के पश्चात् ही प्रस्तुत किया है। 'महाकवि की तर्जनी' के माध्यम से शाश्वत चिंतन को अभिव्यक्त किया है साथ ही रघुवंश के अन्तिम राजा की अत्यधिक भोग के कारण पैदा हुई दुर्दशा की ओर सजग संकेत किया है। यहां तक कि त्रेता का वृहद्साम' जो एक बारगी रामकथा के महारस का आस्वादन है, में भी लेखक ने वर्तमान विचार बोध का पलड़ा नहीं छोड़ा है। 'कठिन भूमि कोमल पग जैसे निबन्ध में भी यथा शोक विह्वल अयोध्यावासियों के मन में था 'जहां राम हैं वहीं अयोध्या', 'राम के बिना राष्ट्र नहीं' यह उक्ति भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में सनातन सिद्धान्त बनकर उत्पन्न होगी एक दिन ऐसी कल्पना तो उनके मन में नहीं थी पर उनकी शोक विह्वल प्रजा भावातिरेक के कारण ही ऐसा सोच रही थी।[९] लेखक के साथ निबन्धों में अनुप्रवेश करने पर पाठक को अपने भीतर के वैशम्पायन के दर्शन होते हैं जो बूटी पाकड़ से कहानी सुनकर वन्य रात्रि में जागरण करता है। लेखक ने शुद्ध मौज या शौक के लिए नहीं लिखा। उसके प्रत्येक शब्द में हविदान है लेखक राम के माध्यम से सम्पूर्ण मानवमात्र को अपना जीवन इस प्रकार जीने का संकल्प लेने का आह्वान करता है—'यह जीवन एक यज्ञ है। तुम इस जीवन के हरेक क्षण को पवित्र हवि मानकर जीना, तुम ऐसे जीना गोया जीवन ही एक अबिराम यज्ञाहुति हो। यह देवताओं का, इन्द्र का, सोम वरुण का है यह तुम्हारा नहीं तुम माध्यम हो उस हवि के परन्तु स्मरण रखना यह देव भोग्य हवि कहीं भी अपवित्र न हो। तुम ज्येष्ठ हो, तुम वरिष्ठ हो, तुम्हारे ही अन्दर वह क्षमता है कि यज्ञरूप विष्णु की विभूति अग्नि तुम्हारे अन्दर प्रतिष्ठित हो सके। बेटा यह उत्तरदायित्व बड़ा ही यंत्रणामय है परन्तु तुम खरा सोना साबित होगे यह मेरा विश्वास है।'

पग-पग पर लेखक का चिन्तक कवि रूप भी ले लेता है तभी वह इतनी गहराई से त्रेतायुग के राम के वनवास की सात रात्रियों के मर्म को प्रस्तुत कर सका है निश्चय ही क्रान्तदर्शी दृष्टि तथा कल्पना के संयोग ने उन्हें ऐसा कवि बनाया है। लेखक का अनुभव अध्ययन और शोध वृत्ति का परिचय उनके निबन्धों से मिलता है वहीं लोककथा प्रेम तथा नव्य आर्य संस्कृति प्रेम परिलक्षित होता है। लेखक ने नव्य आर्य संस्कृति के साथ राम व गंगा का सम्बन्ध जोड़ा है तथा उसके सम्पूर्ण स्वभाव को परखने की कोशिश की है।

वर्तमान की शिश्नोदर सभ्यता के युग में लेखक ने छिन्नमस्ता (कबन्ध) पीढ़ी को देखा है और अस्तित्ववाद के कई पहलुओं को खरा पाया है।[११] किसी फैशन के झोंक में नहीं वरन् पूरी तरह से सजग चिंतक के नाते। उनके 'मुकुलोद्गम' निबन्ध में

कौन सहृदय रस न लेगा और कौन उन्हें कट्टर कहेगा। ईस्टर सम्बन्धी इस विश्वास में मसीहा का अर्थ ऐतिहासिक मसीहा जेरास या यीशु नहीं। क्या ईसा पूर्व बसन्त ऋतु नहीं आती थी यदि आती थी तो फिर ऐतिहासिक यीशु से उसका क्या सम्बन्ध होगा? वास्तव में धर्मग्रन्थों की भाषा ही प्रतीक भाषा रही है। उक्त प्रतीकात्मक कथन का तात्पर्य इतना ही है कि प्रत्येक जन्म के पीछे प्रत्येक प्रसव के पीछे, चाहे वह प्रसव व्यक्ति का हो, संवत्सर का हो या ऐतिहासिक युग का हो— कोई न कोई बलिदान या तप अवश्य रहता है। धरती के भीतर नयी सांस और बाहर हरीतिमा का जन्म किसी न किसी पुण्य और तप के द्वारा घटित होता है। जब किसी का तप या पुण्य का आत्म बलिदान धरती के भीतर का इतिहास के गर्भ में सक्रिय होता है सांस लेने लगता है तब जीवन नये रूप में मुकुल लेता है, नये नये दूसे नये नये पत्ते नये नये फूल नयी व्यवस्थाएँ नयी विधाएँ जन्म लेती हैं।[१२]

हिन्दी ललित निबन्ध भी इसी प्रकार के कर्मनिष्ठ प्रजागर की धारक भूमिका को ग्रहण करने वाले साहित्यकारों की सजग भावना का परिणाम है। हिन्दी ललित निबन्धों को कितना बड़ा योगदान दिया है कुबेरनाथ राय ने यह उनके निबन्धों की मादक गंध से परचने पर ही एहसास हो पाता है। उनके ललित निबन्धों के संग्रह हैं — प्रिया नीलकण्ठी, रस आखेटक, गंध मादन, निषाद बांसुरी, विषाद योग, पर्ण-मुकुट, मणि पुत्तल के नाम, कामधेनु, महाकवि की तर्जनी, मन पवन की नौका, त्रेता का वृहद्साम आदि। सभी एक से एक दिव्य मधुमय भूमिका का रस संचार करने वाले।

हिन्दी ललित निबन्ध में प्रसिद्ध कहानीकार उपन्यासकार शिवप्रसाद सिंह की भी विशिष्ट भूमिका है। शिवप्रसाद सिंह भी कुबेरनाथ राय की भांति ही हमें अन्नमय प्राणमय कोश से ऊपर मन के माध्यम से ज्ञानलोक के आनन्दमय जगत से साक्षात्कार कराते हैं। शिवप्रसाद सिंह ने 'तारा का पाप' में नारी के मन को सम्पूर्ण उद्घाटित किया है तथा तारा हमारी संवेदना के सत्व की अधिकारिणी हो जाती है। पशु प्रेम-मानुषद्वारे प्रेम के उच्च सोपान की यात्रा कराता है और हम भी प्रभाकर माचवे के स्वर में लेखक की विद्वता, फक्कड़पन, यायावरीवृत्ति, लोक कथा प्रेम, सूक्ष्म विचार शक्ति तथा गद्य काव्य की शैली के आवश्यक गुणों का अहसास करने लगते हैं।[१३]

विवेकी राय का नाम भी हिन्दी ललित निबन्धों में सम्माननीय है 'आम रास्ता नहीं है' ललित निबन्ध संग्रह वास्तव में बदलते सामाजिक जीवन के बीच एक रससिक्त वैचारिक यात्रा है। फ्लैप पृष्ठ पर इन निबन्धों के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'सीधे ग्रामात्मा से अपनी धरती से रसा से निचुड़कर आया रस बेहोश सुला देने वाला नहीं संघर्षों और चुनौतियों के लिए प्रस्तुत करने वाला रस आदि से अन्त तक अनुरंजन गुदगुदी चोट कचोट और पनपनाहट से भरी जिजीविषा के लिए मौलिक सृजन संवेदनात्मक घनत्व और वैचारिक प्रौढ़ता का सशक्त प्रतिमान है' इनके ये निबन्ध।

इस प्रकार अन्ततः हम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समकालीन ललित निबन्ध विशेष रूप से समाज की रुचि परिमार्जन के संकल्प को लेकर अग्रसरित हैं तथा इस

आत्मघाती युग में जिजीविषा का एक नया मार्ग-दर्शन कराते हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र के एक कथन से हम बात को समेटें कि 'एक लम्बे समय तक संवादहीनता ही मनुष्य और मनुष्य के बीच होगी उस स्थिति में संवाद की आकांक्षा की बात बेमानी होते हुए भी इस रूप में आवश्यक है कि जब संवाद शुरू होगा तो कोई पहले का सूत्र होगा। मैं इन निबन्धों के द्वारा संवाद नहीं रच रहा हूं संवाद की स्वीकृति दे रहा हूं।'[१४]

संदर्भ—

१. हिन्दी साहित्य आठवां दशक में संकलित डॉ. हर्षनारायण नीरव की उपपत्ति पृ. १४१
२. कुबेरनाथ राय दृष्टि अभिसार भूमिका पृ. १
३. सृजन सम्प्रेषण सम्पादक अज्ञेय पृ. १३८
४. शिवप्रसाद सिंह मानसी गंगा भूमिका पृ. ८
५. कुबेरनाथ राय दृष्टि अभिसार भूमिका पृ. (viii)
६. शिवप्रसाद सिंह मेरी प्रिय कहानियां की भूमिका से पृ. १०
७. विद्यानिवास मिश्र 'छितवन की छांह' पृष्ठभूमि पर आधारित निष्कर्ष
८. यह विवेचन 'दृष्टि अभिसार' के प्रजागर पर्व में साहित्यकार के चिन्तन से सम्बद्ध है।
९. कुबेरनाथ राय त्रेता का वृहद्साम पृ. ३२
१०. वही पृ. ५४
११. विषाद योग में कुबेरनाथ राय यही चिन्तन मुख्यतया उद्घाटित किया है।
१२. कुबेरनाथ राय विषाद योग पृ. ११
१३. शिवप्रसाद सिंह मानसी गंगा पृ. ८
१४. विद्यानिवास मिश्र अग्नि रथ पृ. ७

□

किताबें

कतरा-कतरा जिन्दगी/श्रीमती सुषमा चौहान
अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली/प्र. संस्करण १९९१/तीस रुपये/पृ. सं. ९६

धूल की धरोहर/श्री दुर्गेश
अमित प्रकाशन, चूरू (राज.)/प्र. संस्करण १९९१/पचपन रुपये/पृ. सं. ८०

टीले/श्री विपुल ज्वाला प्रसाद
साहित्यागार/एस. एम. एस. हाइवे, जयपुर/प्र. संस्करण १९९१/साठ रुपये/पृ. सं. १००

अंधेरों की झलक/डॉ. रामकुमार घोटड़
कविता प्रकाशन/तेलीवाड़ा, बीकानेर/प्रथम संस्करण १९९१/चालीस रुपये/पृ. सं. ७२

भगवतीलाल व्यास

राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित चार सद्य प्रकाशित कहानी संग्रह सामने हैं–श्रीमती सुषमा चौहान का 'कतरा-कतरा जिन्दगी,' श्री दुर्गेश का 'धूल की धरोहर', श्री विपुल ज्वाला प्रसाद का 'टीले' और डा. रामकुमार घोटड़ का 'अंधेरों की झलक।'

इन संग्रहों की भाषा अलग-अलग तेवर लिये हो सकती है, कहानी कहने का ढंग हर लेखक का अलग हो सकता है, संवेदन की गहराई भी अलग अलग हो सकती है किन्तु इन कहानियों में कमोबेश एक बात समान देख कर सुखद अनुभूति होती है और वह यह कि इनमें आज की आम जिन्दगी की पड़ताल के लिए एक ईमानदार कोशिश मौजूद है। कहानी विधा की रचना का पाठक से करीबी रिश्ता बनाने के लिए जो तत्त्व सबसे ज्यादा कारगर होता है वह जिन्दगी की यह पड़ताल ही तो है।

आज जो जिन्दगी हम जी रहे हैं वह इतनी सपाट और सरल नहीं है जितनी वह शायद पहले कभी रही होगी। दिनोंदिन यह जटिल से जटिलतर होती जा रही है। कई प्रकार के दबावों, कई प्रकार के प्रलोभनों, कई विवशताओं, कई तिरस्कारों, कई समझौतों, कई इनकारों और कई विवश स्वीकृतियों के रंग-बिरंगे धागों से बुनी है जिन्दगी की यह चादर। जिन्दगी चाहे वह सुषमा चौहान के उच्च मध्यवर्गीय शहरी पात्रों की हो या दुर्गेश के निम्न मध्यवर्गीय ग्रामीण पात्रों की, बुनियादी रूप से जिन्दगी

है और जिन्दगी होने के नाते उसकी कुछ बुलन्दियां हैं, कुछ कमजोरियां हैं और कुछ सवाल हैं। नारी उत्पीड़न का दंश चाहे वह विपुल ज्वाला प्रसाद की कहानियों से उभरे या डॉ. रामप्रसाद घोटड़ की कहानियों से, पाठक को समान रूप से टीसता है। हमारे इर्द-गिर्द घट रही घटनाओं को जिस कलात्मक बारीकी से इन कहानियों में स्थान मिला है वह लेखकों की सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचायक है।

श्रीमती सुषमा चौहान के कथा-संग्रह 'कतरा-कतरा जिन्दगी' में ग्यारह कहानियां हैं। लेखिका का यह पहला कहानी संग्रह है। बकौल खुद लेखिका के उनकी अधिसंख्य कहानियों का कथ्य नारी-यातना है। मगर उनकी कहानियों की नारी पुराने कथानकों की 'अबला' या 'भोग्या' नारी से भिन्न है। वर्तमान की यह नारी समानतावादी चेतना से अनुप्राणित है इसलिए वह जिन्दगी की कठिनतम परिस्थितियों में भी घुटने टेकना नहीं जानती बल्कि वह अपनी संपूर्ण ऊर्जा के साथ संघर्ष के लिए प्रस्तुत हो जाती है। वह पुरुष की कमजोरी नहीं बनती न ही उस पर बोझ बनती है। वह जीवन-यात्रा में एक सहयात्री की भूमिका निभाती है इसलिए कहीं प्रकट तो कहीं अप्रकट रूप से अपने उस अधिकार की मांग भी करती है जिसे एक बराबरी के स्तर पर जीवन जीने का संकल्प लेने वाले को करना चाहिए।

इस हिसाब से सुषमा जी के पात्रों को काफी आक्रामक होना चाहिए था पर वे हैं नहीं। यहां मैं कहना चाहता हूं कि बिना आक्रामक शब्दों की भरमार या बिना आक्रामक आचरण के भी आक्रामकता अपनी पूरी तेजस्विता के साथ प्रकट की जा सकती है। ये कहानियां इस तथ्य को अच्छी तरह चित्रित करती हैं। एक सीमा तक अंतर्मुखी कहे जा सकने वाले इन पात्रों को अलग पहचान लेखिका ने दी है और यही पहचान सुषमा चौहान को नारी-यातना पर लिखी गई अनेक अन्य कहानियों से अलग करती है। सुषमा जी के नारी पात्रों का आक्रोश, सामाजिक विसंगतियों के प्रति उनका विरोध, सोच या नज़रिये की संकीर्णता के प्रति उनकी असहमति शब्दों से कम किन्तु कर्म से अधिक प्रकट होती है। मैं इसे आक्रोश की रचनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखता हूं।

श्री विपुल ज्वाला प्रसाद के कथा-संग्रह 'टीले' में भी ग्यारह कहानियां हैं जिनका कथ्य अपेक्षाकृत बहुआयामी है। पीढ़ियों का संघर्ष इनमें है, एकाकी जीवन का संत्रास इनमें है, शिक्षण-व्यापार, देह-व्यापार, वृक्ष-सुरक्षा आदि विषय भी इनमें हैं। आदिवासी जीवन की झलक भी पाठकों को इन कहानियों में मिलेगी तो नट और बांछड़ा जैसे कबीलों की जिन्दगी की धड़कनें भी पाठक इन कहानियों में महसूस कर सकेगा जिनकी बहुत सी पुरानी परम्पराएं हमारी आज की सभ्यता और सुसंस्कृत कहे जाने वाले समाज के सामने एक प्रश्न चिह्न है। 'रोशनी के शहतीर' की गंगा जैसी साहसी और दृढ़ संकल्प लड़कियां कितनी हैं इन कबीलों में जो अपने सपनों को सच करने के लिए बड़ी से बड़ी जोखिम उठा ले। 'गिद्ध' कहानी निजी शिक्षण संस्थाओं द्वारा किये जा रहे चौतरफा शोषण को बेनकाब करती है तो 'किरच-किरच आसमान' आदिवासी आस्थाओं मान्यताओं और विश्वासों की प्रासंगिकता की परख करती है।

विपुलजी के पास कथा कहने का एक खास मुहावरा है तथा पात्रानुकूल भाषा व्यवहार भी जो उनकी कहानियों को पठनीय बनाने के साथ दीर्घजीवी भी बनाता है। इन कहानियों के कई पात्र पाठक की चेतना में कई दिन तक बने रहने का सामर्थ्य रखते हैं तथा उन समस्याओं पर सोचने के लिए लगातार बाध्य करते हैं जो केवल उन पात्रों की समस्याएं ही नहीं, बल्कि कहीं न कहीं हर पाठक की, हर सामाजिक प्राणी की समस्याएं हैं।

श्री दुर्गेश ने लघुकथाओं के जरिये अपनी एक खास पहचान बनाई है और यह पहचान ताजा हो जाती है जब हम उनके कथा-संग्रह 'धूल की धरोहर' से गुजरते हैं। 'धूल की धरोहर' संग्रह में सोलह कहानियां हैं जो अपने संक्षिप्त किन्तु सुगठित कलेवर के कारण आकर्षित करती हैं, आन्दोलित करती हैं और इस मायने में आल्हादित भी करती हैं कि लेखक में कथाक्षण की सही पकड़ और सटीक अन्दाजेबयां है।

'वारदात', 'हड़ताल', 'बिरादरी का मान', 'कुर्की', 'उजास' और 'अग्निकांड' ऐसी कहानियां हैं जो इस विचार को पुख्ता करती हैं कलेवर की विशालता से बच कर भी अच्छी कहानी पाठक को दी जा सकती है। दुर्गेश के पात्र प्राणवान हैं इसलिए उनको कहीं भी अंगुली पकड़ कर चलाने की जरूरत महसूस नहीं होती। ऐसा लगता है जैसे पात्र खुद कहानी रच रहे हैं।

डॉ. राम कुमार घोटड़ के कहानी संग्रह 'अंधेरों की झलक' में सात कहानियां हैं इनमें से कुछ कहानियां नारी-यातना से सम्बन्धित हैं तो कुछ हमारी सामाजिक विसंगतियों और शोषण को केन्द्र में रख कर लिखी गई हैं।

शोषण चाहे नारी का हो या निर्धन, विवश मनुष्य का, एक ऐसी स्थिति है जिस पर हिन्दी में जम कर लिखा गया है। घोटड़जी की ये कहानियां भी उसी क्रम को आगे बढ़ाती हैं। 'परित्यक्ता', 'गिद्ध ही गिद्ध' और 'अंधेरों की झलक' जैसी कहानियां इस क्रम में कुछ जोड़ती भी हैं।

कुल मिला कर ये चारों संग्रह कुछ नई संभावनाओं से साक्षात्कार करवाते हैं, कुछ स्थापित नामों के नव-सृजन के प्रति आस्था जगाते हैं और इस तरह पाठक प्रदेश की उस कथा-यात्रा का साक्षी बनता है जो निरन्तर गतिमान है।

पुस्तकों का प्रस्तुति पक्ष सराहनीय है तथा आवरण कलात्मक। आशा की जानी चाहिए कि हिन्दी कथा जगत् में इन संग्रहों का स्वागत होगा तथा लेखकों का मान बढ़ेगा।

□

प्रश्नचिह्न (नाटक)/मदन शर्मा
अरुणोदय प्रकाशन, जयपुर/मूल्य ५० रुपये/संस्क. १९९१
कल्पना पिशाच एवं अन्य नाटक/रिजवान जहीर उस्मान/
प्रकाशक : मुहम्मद सालेह, बापू बाजार, उदयपुर/संस्स. १९९१/मूल्य ४० रुपये

डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा

मदन शर्मा की नाट्य कृति 'प्रश्नचिह्न' वस्तुतः तीन रंगमंचीय लघु नाटकों का संकलन है। रचना की भूमिका में लेखक ने युगीन नूतन सोच के संदर्भ में नाट्य विधा की प्रासंगिकता पर स्फुट विचार सूत्र अनुतरित प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किए हैं। नाटक के स्वरूप पर अप्रत्यक्षतः संकेत देते ये प्रश्न लेखक की जागरूकता को रेखांकित करते हैं? यह दूसरी बात है कि इस संदर्भ में उठाए गए प्रश्न सीधे-सीधे नाटक के स्वरूप से न जुड़े होकर लेखक के अपने उलझे सोच को रेखांकित करते हैं। 'श्रेष्ठ नाटक कौन सा होता है?' से यह सोच शुरू होता है और 'जिसमें जीवन का यथार्थवादी चित्रण हो या यथार्थ का चित्रण साधारण फोटो फ्रेम न होकर 'एब्स्ट्रक्ट' विकृत व्याकृत या विरूप हो' के उलटबांसीमय समाधान के साथ समाप्त होता है।

कृति में संकलित तीन नाटकों में से प्रथम 'आगत की प्रतीक्षा' प्रजातन्त्र में आम आदमी की पीड़ा को हेतु रूप में तथा व्यवस्था के अंगों के दोषों को पूरक रूप में उपस्थित करता है। जमूरे और मदारी के बहु प्रचलित प्रतीक के माध्यम से सामान्यजन अभावमयी जिन्दगी की संघर्षशीलता को उभारते हुए नाटक का कथानक भ्रष्टता को और स्वार्थाश्रित आचारशीलता के कारण बेईमान होते जाते नेताओं, विरोधी दल के नेताओं, अफसरों, व्यापारियों के निकृष्ट व्यवहार को एवं उनके माध्यम से सामन्यजन के मोहभंग को व्यंग्य के धरातल पर उपस्थित करता है। यह मोहभंग सभी दिशाओं में एक साथ न दर्शाया जाकर सुगठित नाटकीय विन्यास के माध्यम से क्रमशः परत दर परत उधेड़ते हुए दर्शाया गया है। सुन्दर एवं खुशहाल भविष्य के सपने लेने वाले सामान्यजन अपने श्रम से आस्था के बीज को राष्ट्रीय स्तर पर किसी एक पर केन्द्रित करते हैं लेकिन परिणाम में और भी अधिक त्रासदायक हताशा हाथ लगती है।

नाटक का समूचा रचाव युगीन अपरिपक्व शिक्षित नवयुवक के नजरिए से देखी गई सामाजिकता पर अधिक अवलम्बित है जिसमें जुमले उछालने को वैचारिकता के रूप में देखा समझा जाता है। जिसमें भूख, इन्सानियत, भ्रष्टाचार, मण्डल–कमण्डल, सांडों की नस्लें जैसे चालू मुहावरे अत्यधिक मात्रा में स्वीकृत होते हैं। वस्तु व्यापार में नाटकीयता प्रभावशाली है, सम्वादों में चुस्ती और कसावट है, दृश्यबन्धों में सूच्य और अभिनेय सत्यों का अन्तराल अनुपस्थित है अतः सामान्यतः नाटक रेडियो नाटक सा डायलॉगों पर और उनसे संकेतित कच्ची-पक्की व्यंग्यपरकता पर अधिक निर्भर है।

दूसरा नाटक 'प्रश्नचिह्न' कोरस और सूत्रधार की परम्परित नाट्यशैली पर आधारित है। विचार के स्तर पर इसमें भी मानव को भूखा, नंगा, हड्डियों का ढांचा, जोकर, जानवर, लाचार, बेचारा के विशेषणों की शृंखलाओं में बाँधकर उसे पूरी तरह से विकल्पहीन बतलाया गया है। फिर भी वह 'प्रश्न भूख का नहीं मानवता का है। अन्याय और अतिक्रमण के विरुद्ध संघर्ष का है' जैसी थोथी आदर्शवादी बातें करता है। यहाँ भी सामाजिक विकृत आचार शीलता को मदिरा, (एय्याशी व मादकता) कर्नल (हथियार और युद्ध) कुटिल (षड़यन्त्र) और कुबेर (पूंजीपति) के मानव प्रतीकों से चित्रित किया गया है। नाटक में हिंसा, बर्बरता और नृशंसता के युगीन क्रिया व्यापारों को प्रभावशाली ढंग से उकेरा गया है। यह नाटक भी रचाव में रेडियो नाटक सा सम्वादों की बैसाखियों पर टंगा हुआ है। स्फुट व्यंग्य की जगह समन्वित व्यंग्य को केन्द्रित करता है।

तीसरा नाटक 'रोशनी और रक्तबीज' नवयुवा मन की आदर्शशालिता को विद्रूप यथार्थ के प्रहारों से खण्ड-खण्ड होते वर्णित करता है। शिक्षित युवा की बेरोजगारी की अभावग्रस्तता का लाभ हिंसा या तस्करी जैसे घृणित कर्मों में लेने वाले प्रेरकों पर इसमें आदर्श की कुल्हाड़ी से प्रहार करने का प्रयास हुआ है। और किताबी नारों 'दूर दृष्टि', 'पक्का इरादा' 'कठोर परिश्रम' से रक्तबीज को जीतने के हवाई आदर्शों पर कथानक केन्द्रित है।

मदन शर्मा के ये नाटक चौंकाते हैं पर बांधते नहीं हैं इनमें युगीन शिक्षित युवा के मानस व्यापारों का अच्छा अंकन है पर वे दर्शक को बांधने में शायद समर्थ न रहें। नाट्य प्रस्तुतियों में क्रिया एवं एक्शन की त्वरा का अच्छा इस्तेमाल हुआ है। सम्वाद भी कसे हुए हैं इससे ये प्रभावित भी करते हैं।

□

रिजवान जहीर उस्मान के नाटक लीक से हटकर परम्पराभंजकता का भाव लिए रहते हैं। गहरे सोच एवं चिन्तन के गर्भ से निकलने वाले इनके नाटकों में एक ओर पाशविक बर्बरता के सर्वभक्षी स्वरूपों को जीवन्त करने का प्रयास रहता है तो दूसरी ओर प्रयोग के वैशिष्ट्य को चारों तरफ से उत्साहपूर्वक समेटने की सफल-विफल-चेष्टाएँ प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। इनके प्रसिद्ध नाटक 'नमस्कार आज शुक्रवार है' की ही भाँति लेखक की नाट्य रचना की सारी निजताएँ प्रस्तुत कृति 'कल्पनापिशाच और अन्य नाटक' में भी साकार दिखाई देती हैं। रिजवान के लिए नाटक मनोरन्जन का मंचीय आधार न होकर दर्शकों तक एक सुनिश्चित् सोच को अपनी चतुर्दिक दिशाओं के साथ पहुँचाने का एक माध्यम है। इसी कारण अपने रचाव में इनके नाटक रूपकीय दृश्याधारों से कहीं अधिक वैचारिक सत्यों का जीवन्त प्रत्यक्षीकृत रूप उपस्थित करते हैं।

कृति का पहला नाटक 'कल्पनापिशाच' शोषक की सम्प्रभुता को सनातन मानकर उसके द्वारा पाशविक ढंग से किए जाने वाले निरन्तर शोषण को बिना अन्तरालों के उपस्थित करने का प्रयास करता है। लेखक ने अपने इस संकोच को भूमिका में प्रस्तुत किया है कि वह आदिवासी बन्धक को जिस निर्दयता से पिटते देखा था उसे वह नाटकीय यथार्थ में परिणत नहीं कर सका है। शायद इसी कारण नाटक का शीर्षक 'कल्पना पिचाच' रखा गया है। नाटक में शक्ति और साधन सम्पन्नों की हिंसक आचारशीलता को और सामान्यजन की विकल्पहीन निरीहता को नाट्य की रंगमंचीय सीमाओं में अभिनेय बनाया गया है। कथा की सीमाओं को मंचीय चातुर्य एवं एक्शन की विविधताओं से पूरा करने का उपक्रम हुआ है। इसके लिए अनाम पात्रों में से एक को पिशाच तो शेष तीन को अभावग्रस्त बन्धकों के प्रतीकों में ढाला गया है। ये बन्धक पिशाच की निर्दय आशाओं को उसके सम्मुख पशुवत् मानने को तैयार रहते हैं तो उसकी अनुपस्थिति में उसके नाश की योजनाएँ बनाते हैं, चेष्टाएँ करते हैं किन्तु सनातन सत्य की तरह हर बार वे विफल ही रहते हैं। महाभारत भले ही समाप्त हो गया हो पर शोषक-शोषित की यह संघर्षमयी सनातनता हर युग में हर संदर्भ मे उपस्थित रहती है यही बात नाटक दर्शकों तक सम्प्रेषित करता है।

यद्यपि नाटक के प्रथमार्द्ध में सिर्फ पात्र एक ही मौखिक सम्वाद बोलता है शेष सभी पालतु पशु की तरह मूक रहकर आज्ञापालन करते हैं इससे नाटक इकतरफा सम्वादों की बोझिलता लिए हुए है। इसीलिए उस दोष को दूर करने के लिए नाटक में रोबोट भी हैं जो मशीनी आज्ञापालन करते हैं, तोता है जो रटी भाषा बोलता है और पिंजरा है जो दिखने में आकर्षक पर शोषक के निरंकुशता का साकार रूप है। दृश्य छोटे छोटे हैं और एक्शन रूटीनी है। सम्वाद काव्यमयता और बेमानी दार्शनिकता लिए हुए हैं। नाटक का रचाव कसावट लिए हुए है पर प्रभाव दुर्बल ही रहता है।

दूसरा नाटक 'अतीतगामी' एक लोककथा पर आधारित राष्ट्रीय नेतृत्व की स्वार्थकारी वृत्तियों और उनकी सत्ता पाने की एषणाओं को व्यक्त करता है। मक्कारी, अवसरवाद, प्रदर्शनप्रियता, पलायन, अधिकारलोलुपता से भरी आज की युवा पीढ़ी राष्ट्रीय नेतृत्व का संवहन करती है। इस तरह के पात्रों में नेतृत्व की वह क्षमता नहीं है जो चरित्रवान दृढ प्रतिज्ञ व्यक्तित्वों में होती है। इसी कारण वे राष्ट्र को विदिशा में धकेलकर स्वयं के लिए स्वर्णिम सीढियों का निर्माण करते हैं। वर्तमान निकम्मी किन्तु अधिकारों के लिए लालायित स्वप्नदर्शी युवा पीढ़ी के सोच पर भी अप्रकट व्यंग्य, नाटक में है। नाटक में सपाटपन अधिक है और केवल दो पात्रों की प्रश्नोत्तर शैली के सम्वादों से उसमें बेजानता दिखाई देती है। वस्तु व्यापारों में विविधता का अभाव नाटक की बहुत बड़ी कमजोरी है।

तीसरा नाटक 'सराय यतीमों का डेरा' सामयिक राष्ट्रीय समस्याओं पर आधारित है। देशभक्ति के नाम पर संकीर्णताओं के जहर को फैलाने वालों के यथार्थ को व्यक्त करता यह नाटक लेखक की हार्दिक पीड़ाओं को मुखरित करता है। राष्ट्रीयता का आदर्शवाद घिनौने यथार्थ के सामने लुंजपुंज दशा को प्राप्त है और राष्ट्रीयता के

विरोधी देशभक्त होने का दावा करते हैं इसे इस नाटक में रेखांकित करने का प्रयास हुआ है ।

रिज़वान के नाटकों में राष्ट्रप्रेम से लेकर वृहत्तर स्तर पर फैले हुए मानवीय पीड़ाओं को ही कथ्य के केन्द्र में रखा जाता है । सोच का नाट्य रूपान्तर इनके नाटकों की खूबियाँ हैं । लेकिन उनमें भावनात्मक टच बिल्कुल अनुपस्थित रहता है । इस कारण इनके नाटक कहीं कहीं गहरे तो सोचने को प्रेरित करते हैं तो अधिकतर बौद्धिक व्यायाम को ही साकार करते रहते हैं । उसकी निरसताएँ जहाँ दर्शकों के लिए निरन्तर ऊब निपजाती रहती हैं तो दूसरी ओर हिंसा, शोषण, आतंक और रक्तिम एषणाओं की भयावहता का भी जीवन्त अंकन करती चलती हैं । रिजवान के ये तीनों नाटक उस भयावहता को, पैशाचिकता के वर्चस्व को और सामान्यजन की विकल्पहीन दशाओं को प्रभावशाली ढंग से अंकित करते हैं । इनके विन्यास में लेकिन रंगमंचीय शर्तें तो पूरी होती हैं किन्तु शायद नाटक की अपनी निजता साकार नहीं हो पाती ।

□

अश्वमेघी मुद्रा/कन्हैयालाल वक्र

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर/प्रथम संस्करण १९९१/मूल्य-चालीस रुपये/पृ. संख्या ९६

निन्दक नियरे राखिये/देवेन्द्र इन्द्रेश

अरविन्द प्रकाशन, उदयपुर/प्रथम संस्करण १९९१/मूल्य-चालीस रुपये/पृ. संख्या ८६

यात्राएं और संस्मरण/विष्णु भट्ट

पुस्तक सदन, उदयपुर/प्रथम संस्करण १९९१/मूल्य-पचास रुपये/पृष्ठ संख्या १११

प्रो. महेशचन्द्र पुरोहित

कन्हैयालाल वक्र मूल रूप से कवि हैं । निबन्ध संकलन "अश्वमेघी मुद्रा" के साथ उन्होंने गद्य के क्षेत्र में प्रथम कदम रखा है । प्रस्तुत पुस्तक के निबन्ध दो खण्डों में विभक्त हैं । प्रथम खण्ड में नौ और द्वितीय खण्ड में आठ लेख संकलित हैं । निबन्धों को दो खण्डों में विभक्त करने का कोई आधार स्पष्ट नहीं है ।

संकलन की भूमिका में हरीश भादानी ने ठीक ही लिखा है – "........वक्रजी अभी इस समाज सागर की सीमाओं और पहिचानने की प्रक्रिया में ही है । इसी कारण आधे डूबे हैं, जब कि लगातार गोता लगाने से ही गहराई और तैरते जाने से ही दूरान्तों को पहचाना जा सकेगा ।" आधे डूबे होने पर सागर की सतह को ही पहिचाना जा सकता है । गहराई की सच्चाइयों का कुछ पता नहीं लगता । यही कारण है कि कुछ को छोड़कर संकलन के अधिकांश लेख सामाजिक सरोकारों का सतही अन्वेषण ही कर पाते हैं । गहराई में जाकर समसामयिक समस्याओं के मूल को स्पर्श करने से वे वंचित रहे हैं ।

समकालीन विद्रूपताओं, विसंगतियों और विडम्बनाओं की गहनतम परतों में न जा पाने के कारण रचनाकार की दृष्टि में विरोधाभास परिलक्षित हुआ है। उदाहरणार्थ, एक तरफ निबंध 'कलुआ के बहाने' में लेखक ने पुराणों के बारे में टिप्पणी की है—'....यथास्थिति में समाज पर जिस वर्ग का प्रभुत्व है, वह बना रहे, यही काम मध्य युग में पुराणों के द्वारा और अनेक धार्मिक कानूनों के द्वारा तत्कालीन मठाधीशों ने किया था' यह टिप्पणी पुराणों को कटघरे में रखने के लिए पर्याप्त है। दूसरी तरफ लेखक 'विवेकानंद प्रासंगिक' लेख में लिखता है—'इस देश को विवेकानन्दजी की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि तब थी।' इस प्रकार लेखक ने आज के परिवेश में विवेकानन्द की प्रासंगिकता प्रतिपादित की है। विवेकानन्द साहित्य के अध्ययन से यह पता पड़ सकता है कि विवेकानन्द पुराणों को कितने सम्मान की दृष्टि से देखते थे। विवेकानन्द ने कहा है—'उपनिषद् हमारी पवित्रतम धर्म पुस्तकें हैं। भले कोई भी दर्शन या सम्प्रदाय हो, भारत में प्रत्येक को शक्ति उपनिषद् से ही प्राप्त करनी पड़ती है। उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति देता है। उपनिषद् शक्ति की खान हैं। उनमें इतनी शक्ति है कि पूरी दुनिया को अनुप्राणित कर दे। भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता उपनिषदों के मूलमंत्र हैं।' विवेकानंद को प्रासंगिक ठहराने वाली लेखकीय दृष्टि के साथ पुराणों संबंधी उपरोक्त टिप्पणी की संगति नहीं बैठती है। यह तो दो घोड़ों पर एक साथ सवारी जैसी बात है। पुराणों के अध्ययन और विवेकानंद साहित्य के अनुशीलन की गहराइयों में डूबकर ही इस प्रकार अन्तर्विरोध दूर किया जा सकता है।

संकलन के निबन्ध कथ्य की विविधता लिये हुए हैं। कुछ निबन्ध प्रतिपाद्य विषय के माध्यम से सहज और स्वच्छन्द मनःस्थिति में लेखक की संवेदनशील एवं निजी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के कारण प्रभावी बन पड़े हैं। 'कलुआ के बहाने' में व्यवस्था के उन कुचक्रों की तरफ पर्याप्त संकेत हैं जिनके द्वारा समाज की अस्मिता और संस्कृति को विकृत किया जा रहा है। 'धर्म की बात' में धर्म के नाम पर पाखंड पर करारी चोट की गयी है। 'दल, दिल और दंभ' में राजनीति में दलबदल और दिल की भूमिका पर धारदार व्यंग्य है। 'महंगाई को मारे सो मीर' में आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न आम आदमी की त्रासदी को वाणी दी गयी है। 'एक लोक कथा की अश्वमेघी मुद्रा' सामाजिक विद्रूपताओं को व्यक्त करती हुई लोक मानस की संघर्षशीलता का दस्तावेज प्रस्तुत करती है। वस्तुतः 'कलुआ के बहाने' और 'एक लोक कथा की अश्वमेघी मुद्रा' संकलन की सर्वाधिक सशक्त रचनाएं हैं। 'छंगेजी और त्रिभुज के तीन कोण' में पुरस्कार प्राप्त करने हेतु जोड़ तोड़ की प्रवृत्ति पर व्यंग्य हैं।

'युवा लव कुश थामेंगे रामजी का घोड़ा' निबन्ध में रामनाम का घोड़ा न रोक पाने के लिए युवा लोगों की उदासीनता और बुजुर्गों की नपुंसकता को सतही तौर पर कोसा गया है तथा अंत में युवाओं को घोड़ा रोकने हेतु आह्वान किया गया है। इसी विषय से संबधित रचना 'डायल १०.' है जिसमें रामजन्म भूमि बाबरी मस्जिद प्रकरण साम्प्रदायिकता के मसले के रूप में रखा गया है, लेकिन उसके समाधान की दिशा में

विवेचन नहीं है । अच्छा होता यदि लेखक इस समस्या के उद्भव की गहनतम परतों की पड़ताल करता कि वे कौन कौन से कारक हैं जिनके फलस्वरूप रामनाम को अश्वमेधी मुद्रा की यह विस्फोटनात्मक प्रतिक्रिया हुई है । इस प्रक्रिया में संभव है समस्या के समाधान के सूत्र भी लेखक के हाथ लग जाते । इसी निबंध में लेखक ने शब्द 'हिन्दू' को धर्म या संप्रदाय के रूप में प्रयुक्त किया है । वस्तुतः आज यह स्पष्ट है कि 'हिन्दू', धर्म नहीं, अपितु राष्ट्रीयता है । एक भारतीय होने के लिए लेखक ने जो जो शर्तें रखी हैं, वे ही 'हिन्दू' होने के लिए पर्याप्त हैं । यही कारण है कि भारत से जो मुसलमान बाहर जाते हैं, उन्हें विदेशों में 'हिन्दू मुसलमान' कहा जाता है । 'हिन्दू' शब्द के प्रति एलर्जी तो जानबूझकर राजनेताओं द्वारा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए उत्पन्न की गयी हैं ।

यद्यपि संकलन के निबन्धों का मूल स्वर व्यंग्यात्मक नहीं है फिर भी लेखक ने अनेकों स्थलों पर चुटकियां अवश्य ली हैं जो उसकी मूल्य चेतना से निःसृत हैं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं— 'हे गौरीनंदन ! हमारी मातृभूमि के पास आज अपनी सर्वमान्य जिह्वा नहीं है, इसलिए मेरे देश के पथ-प्रदर्शक खास मौकों पर विदेशी भाषा में तुतलाने को मानसिक रूप से मजबूर हैं ।' (पृ. ५), 'बाहर बोर्ड लगाकर धर्मार्थ के नाम पर धर्मशालाओं का व्यापार इस युग धर्म की बात है ।' (पृ. १६), 'राष्ट्रीय कांग्रेस पिछले कुछ वर्षों से कांग्रेस अ से ई और म से श तक जा पहुंची थी । गत वर्षों में यदि अनुकूल पर्यावरण रहा होता तो यह विकास प्रक्रिया बहुत संभव है ज तक पहुंच ही जाती । (पृ. १८), 'उसके दिमाग में तो दो और दो चार नहीं होते बल्कि चार रोटियां होते हैं ।' (पृ. ५१), 'इस मलेरिया के कीटाणु शरणार्थी की तरह आते हैं और फिर आसाम में बंगालियों की तरह रम जाते हैं ।' (पृ. ५२), 'नीमड़ी पर जाकर कौए के बैठने का अर्थ ऐसा हुआ जैसे आतंकवादी गुरुद्वारे में घुस गये हों ।' (पृ. ६२)

निबंधों का केन्द्रीय तत्व वह आस्था है जो समाज के सामंती और पूंजीवादी संस्कार को बदलने, मानसिक गुलामी से मुक्त होने तथा सुविधाभोगी आचरण को त्यागने की प्रेरणा देती है । यही कारण है कि अनेकों स्थलों पर लेखक की टिप्पणियां पाठक को कुछ सोचने को मज़बूर कर देती हैं । कुछ नमूने प्रस्तुत हैं— 'मानवीय मूल्यों का ह्रास आदमी के आदमी से जुड़ने से नहीं होता, बल्कि दूर हटने से होता है ।' (पृ. ७), 'यह एहसास भी जरूरी है कि वह आदमी है और आदमी किसी के इस्तेमाल की वस्तु नहीं होती । यह भी कि इस्तेमाल की जा सकने वाली वस्तु जिन्स कहलाती हैं और कलुआ जिन्स नहीं है ।' (पृ. ८), 'आज जब हम थोड़ी सी परेशानी से बचने के लिए बलात्कार, राहजनी और डाकेजनी की वारदात तक को अनदेखा कर देते हैं तो यकीन जानिये कि समाज में परिवर्तन हमारे बस की बात नहीं है ।' (पृ. १४)

निस्सन्देह ये निबन्ध नव परिवेश के आलोक में नये प्रश्नों और दिशाओं को उद्घाटित करते हैं और यही इनकी सार्थकता है । सरल और सहज अभिव्यक्ति वक्र का गुण है और निर्भीकता उनका स्वभाव । भावप्रवण मानवीय सरोकार लगभग सभी

निबन्धों में समाया हुआ है। भावोन्मेष के साथ कल्पनाशीलता का सहारा लेने से निबन्धों की प्रभविष्णुता में वृद्धि हुई है।

मुद्रण में कहीं-कहीं प्रूफ की त्रुटियां खटकती हैं। पुस्तक लेखक के गद्य लेखन के भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है। संकलन पठनीय और चिन्तनीय है।

□

प्रस्तुत पुस्तक के साथ देवेन्द्र इन्द्रेश ने व्यंग्य के अखाड़े में नया कदम रखा है। सौभाग्य से इस अखाड़े में आज दिग्गज पहलवान हैं जो परस्पर दांवपेंच करते रहते हैं। उनके इन दांव पेचों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में नये मल्ल को चाहिये कि वह अपने अग्रजों से सीखता रहे और लगन से मेहनत करता रहे।

हास्य व्यंग्य विधा में लेखन हेतु दो विशिष्टताएं अपेक्षित हैं। इन में से एक है समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को पकड़ने का सामर्थ्य और दूसरी है तिरछा प्रहार करने की क्षमता। प्रथम विशिष्टता जहाँ व्यंग्य लेखन के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है तो द्वितीय विशिष्टता उसे अपेक्षित रूप में पूर्णता प्रदान करती है। अतः यदि किसी रचना में इन दोनों विशिष्टताओं में से एक का भी अभाव है तो वह रचना प्रभावकारी नहीं होती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कृतिकार के पास विसंगतियों को पकड़ने वाली आंख है, लेकिन जहाँ तक टेढ़ा प्रहार करने की क्षमता का प्रश्न है, वह संकलन में कहीं कहीं ही दृष्टिगत होती है। यही कारण है कि संकलन की अधिकांश रचनाओं में विसंगतियों का प्रकटीकरण प्रभाव डालने में असमर्थ है।

संकलन की कुछ रचनाएं अवश्य ही प्रभावकारी बन पड़ी हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं– मरिये मगर प्यार से, पुरस्कार न मिलने की त्रासदी, प्रशासन रसोई घर की ओर, मौसम झकने का, अ....सत्यमेव जयते और मेरी दो टकिया की नौकरी। इन रचनाओं में अनेकों स्थलों पर रचनाकार के टेढ़ा प्रहार करने की क्षमता का आभास होता है जो उसके भविष्य के प्रति आश्वस्त करता है। उदाहरणार्थ, 'मेंढक की टर्र-टर्र तो केवल बरसात के मौसम में ही सुनायी देती है। पर इस मानवश्री की टर्र टर्र का तो कोई मौसम नहीं' (पृ. २२), 'इस बार वे (लक्ष्मी) गरीबों की कुटिया में अवश्य पधारेंगी। इन गरीबों के दीयों में आश्वासन का तेल डालकर जगर मगर करेंगी।' (पृ. २५), 'तो कोई मरकर भी जीवित रहता है। ऐसे कई दिवंगत चुनाव में वोट डालते हैं और राशन कार्ड पर बैठकर शक्कर और गेहूं का राशन लेते रहते हैं।' (पृ ३०), 'बाबा तुलसी के जमाने में साहित्य 'स्वान्तः सुखाय' हुआ करता था। अब तो 'पुरस्कार हिताय' हो गया है।' (पृ. ३४), 'जब प्रशासन गांव की ओर गया था तो शहर की बिजली क्या गुल नहीं हुई थी।' (पृ. ४१), 'यह रोजगार दफ्तर एक ऐसा दफ्तर है जिससे यह पता चल जाता है कि देश में कितने बेरोजगार हैं तथा कितनी

मुखगरी फैल रही है।' (पृ. ७९), 'मैं जानता हूं पढ़ाई खत्म करने के बाद यदि नौकरी के लिये नाम दर्ज कराया जाये तो मरने के दस बारह साल बाद नम्बर आता है।' (पृ. ८०), 'लोगों का काम मंत्री महोदय से कराने के लिये पुत्र ही 'थ्रू प्रोपर चैनल' का काम करता है।' (पृ. ८२)

संकलन की सर्वाधिक प्रभावी रचना है 'अ...सत्यमेव जयते'। इसमें अन्य रचनाओं की अपेक्षा शब्द चयन से लेकर रचना विधान तक अधिक कसावट है। यह एवं उपरोक्त रचनाएं इस बात की गवाही देती हैं कि कृतिकार अपनी एक विशिष्ट शैली के विकास की प्रक्रिया में है। यदि रचनाकार विसंगतियों की पकड़ के साथ ही ध्वन्यात्मक तीखापन, प्रतीकात्मक प्रयोग, कल्पना का उपयोग, भाषा की प्रौढ़ता और परिप्रेक्ष्यानुसार शब्द चयन का सहारा लेता चले तो निश्चित ही वह अपनी एक विशिष्ट शैली विकसित कर लेगा। उल्लिखित रचनाएं लेखक में परिपूर्ण संभावनाओं के प्रति स्पष्टतः संकेत करती हैं।

किसी भी पुस्तक को तैयार करते समय लेखक के लिए यह अन्यावश्यक है कि वह अपनी रचनाओं को कृति में स्थान देने से पूर्व स्वयं को कठोर सेंसरशिप से गुज़ारे ताकि हलकी रचनाएं उसमें स्थान न पा सकें। यह सेंसरशिप जितनी कठोर होगी, पुस्तक में निखार उतना ही आयेगा। यह इसलिए आवश्यक है कि साहित्यकार के लिए पुस्तक एक स्थायी निधि है और साहित्य जगत में उसके मूल्यांकन की कसौटी है। रचनाओं का गोष्ठियों में पढ़ना या पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पा लेना बिलकुल अलग बात है।

हिंदी में छपी पुस्तक में प्रयुक्त अरबी अंक स्वयं भाषा के स्तर पर विसंगति उद्घाटित करते प्रतीत होते हैं। प्रूफ की अशुद्धियां भाषा के सहज प्रभाव में जगह जगह अवरोध उत्पन्न करती हैं। पुस्तक की साज–सज्जा आकर्षक है।

□

वर्णन में साहित्यिकता के समावेश से 'यात्रा साहित्य' का सृजन होता है। समसामयिक हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में यात्रा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक में विष्णु भट्ट की दो यात्राओं का सजीव वर्णन हैं। पहिली यात्रा शिमला की एवं दूसरी कन्याकुमारी की है। अंत में 'भारत पर्यटन : एक दृष्टि' शीर्षक से एक परिशिष्ट है जिसमें पर्यटन को उद्योग के रूप में विकसित करने की संभावनाओं पर विचार किया गया है।

यात्रा साहित्य में वे स्थल विशिष्ट स्थान पा जाते हैं जिनमें प्राकृतिक सुषमा हो या ऐतिहासिक महत्व की स्थापत्य कला हो। धार्मिक आस्था के केन्द्र भी रचनाकार का अतिरिक्त ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। यदि इन स्थलों के मात्र वर्णन की अपेक्षा लेखक प्रभावांकन, प्रतिक्रिया संप्रेषण और संवेदन जागृत करने की कला का भी उपयोग करे तो कृति प्रभावी बन जाती है। निस्संदेह विष्णु भट्ट ने इन सभी बिंदुओं का विशेष

ध्यान रखा है। चित्रांकन के कई सुन्दर स्थल पुस्तक में द्रष्टव्य हैं। यथा—'शिमला की स्थिति बिलकुल एक नाग जैसी रही थी जो मानो कुंडली मारकर बैठा हो, फन फैलाकर और शैय्या बनाकर। अर्थात् नाग का फन 'जाख्, शैय्या 'मालरोड' और निचले इलाके की गोलाकार सड़कें कुण्डली के रूप में लग रही थी।' (पृष्ठ २८) और 'हम लोग सरकारी प्रेस के पास तक ही पहुंच पाये होंगे कि रूई के फोहे जैसे सफेद कण हवा में तैरते हुए दिखायी दिये। वे ऐसे लग रहे थे मानों साबुन के झाग के छोटे-छोटे फुग्गे-गुब्बारे हवा में तैर रहे हों।' पृष्ठ (३२)

यात्रा वर्णन के साथ ही लेखक ने शिमला, दिल्ली, जयपुर और रामेश्वरम् की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी भी पाठक को दी है। विभिन्न दर्शनीय स्थलों का शीर्षक सहित पृथक् पृथक् वर्णन करने से पुस्तक एक दिग्दर्शिका का काम भी करती है।

अपने संस्मरणों में लेखक ने मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करके रोचकता में वृद्धि की है। जैसे, गर्ज के समय गधे को भी बाप बनाना, पेट में चूहे दौड़ना, आँखें फटी की फटी रहना, आदि। 'पेट में चूहे दौड़ना' लेखक का अत्यन्त ही प्रिय मुहावरा लगता है। इसे उन्होंने इतनी अधिक बार प्रयुक्त किया है कि पुनरुक्ति दोष जैसा लगता है।

लेखक की भाषा में सहज प्रवाह है, लेकिन भाषा के कतिपय दोषों के कारण उस सहज प्रवाह में अवरोध आ जाते हैं। कहीं-कहीं वाक्य विन्यास में त्रुटियां दिखायी देती हैं। उदाहरणार्थ, 'मुख्य द्वार पर एक हाथी आकर्षण का केन्द्र था जो यात्रियों द्वारा दिये गये पैसे महावत को सूंड में लेकर दे रहा था। (पृ. ७५)' इस वाक्य का अंतिम अंश वस्तुतः इस प्रकार होना चाहिए, '.......पैसे सूंड में लेकर महावत को दे रहा था।' इसी प्रकार, 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने इस भव्य स्मारक की पूर्ण व्यवस्था हेतु ट्रस्ट बनाया हुआ है। (पृ. ८४)' वाक्य भी त्रुटिपूर्ण है। अनेकानेक स्थानों पर विरामों और अर्धविरामों का प्रयोग भी समुचित नहीं हैं।

लेखक ने एक जगह टिप्पणी की है— 'गाइड का अंग्रेजी प्रेम हम हिंदी प्रेमियों को अखरा।' लेकिन लेखक ने अपनी भाषा में खुलकर अत्यधिक ऐसे अंग्रेजी के शब्दों को बार बार प्रयुक्त किया है जिनके स्थान पर हिन्दी के शब्द आसानी से काम में लाये जा सकते थे। जैसे, फ्रेश होकर, वेल-डिसिप्लिंड, चार्जेज, लंच लिया, पेमेन्ट किया, सीजन, पार्क किया, सिचुएशन, स्ट्रेन, क्रेडिट, सारे गार्डन में, पर्चेजिग, आदि, वैसे अनेकानेक अंग्रेजी के शब्द हिंदी ने आत्मसात् कर लिये हैं, क्योंकि उनके स्थान पर यदि हिन्दी के शब्द बनाये जायें और प्रयोग में लाये जायें तो भाषा क्लिष्ट हो जाये। लेकिन उपरोक्त शब्द ऐसे नहीं हैं, वल्कि इनके स्थान पर हिन्दी के अधिक सरल और सहज शब्द प्रयुक्त किये जा सकते हैं। ऐसा करने से भाषा की शुद्धता भी रह जाती है और उसके लालित्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

यदि लेखक भाषा की उपरोक्त त्रुटियों के प्रति सावधान रहे तो निश्चय ही उसकी भाषा के सहज प्रवाह और लालित्य में निखार आयेगा।

पुस्तक के मुद्रण में प्रूफ की अनेकानेक त्रुटियां रह गयी हैं। कहीं कहीं तो ये त्रुटियां इतनी अधिक हैं कि पाठक की सहनशीलता की परीक्षा लेती सी प्रतीत होती हैं। जैसे, अकेले पृष्ठ ८१ पर ही प्रूफ की लगभग बीस त्रुटियां गिनी जा सकती हैं।

लेखक का यात्रा वर्णन जीवन्त है। जो व्यक्ति इन स्थलों की यात्रा कर चुके हों, उनकी स्मृति पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मानस पटल पर उभरने लगती है। जिन्होंने इन स्थलों को नहीं देखा है, उनके मन में इन स्थानों की यात्रा करने की ललक मन में उत्पन्न हो जाती है। यही इस कृति की सार्थकता है। कुल मिलाकर पुस्तक ज्ञानवर्धक और रोचक है। यायावर प्रकृति के व्यक्तियों के लिए यह कृति पठनीय ही नहीं संग्रहणीय भी है।

□

'विजय-केतु'/(खण्डकाव्य)/बलवीर सिंह 'करुण'
प्रकाशक– साहित्यागार, जयपुर/मूल्य ६५ रु.

डॉ. राधेश्याम शर्मा

सजग राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित होकर लिखे गए काव्यों की एक सीमा यह होती है कि वे अपने संदेश में इतने नीरस और सपाट हो जाते हैं कि उनमें काव्योचित संकेतात्मकता नहीं रह पाती। या फिर संकीर्ण राष्ट्रवाद के प्रचार में वे उस मूल्यवत्ता को खो बैठते हैं, जो काव्य के लिए जरूरी होती है। प्रखर राष्ट्रवादी कवि श्री बलवीर सिंह 'करुण' का खण्डकाव्य 'विजय–केतु' इन प्रतिवादों से मुक्त रहने के कारण विचार संवेदना की दृष्टि से उल्लेखनीय बन सका है। कथानक का 'पेटर्न' हिंदी साहित्य के आदिकालीन वीरकाव्यों जैसा है– औरंगजेब द्वारा रूपनगर की सुन्दर राजकन्या चंचला को अपनी वासना का शिकार बनाने के लिए भरे दरबार में घोषणा, कायर पिता और भाई की सहमति, असहाय चंचला द्वारा उदयपुर के महाराणा राजसिंह से सहायता की याचना और प्रणय-प्रस्ताव, राजसिंह की स्वीकृति और दोनों का विवाह, क्रुद्ध औरंगजेब द्वारा राजसिंह पर आक्रमण, युद्ध में औरंगजेब की पराजय और आकाश में महाराणा का 'विजय-केतु' फहराना आदि सब सामन्ती युग की कहानी है। यों तो शास्त्रीय दृष्टि से यह वीर और शृंगार रस का काव्य है पर कवि की रचनादृष्टि ने इसे नारी के स्वाभिमान और राष्ट्रीय अस्मिता की तीखी चेतना से जोड़ कर उसे व्यापक आयाम दिया है। औरंगजेब की हार और राजसिंह की विजय दो व्यक्तियों की नहीं, दो मनोवृत्तियों की विजय-पराजय है। यह हवस पर इंसानियत की, पुरुष के क्रूर अहं पर नारी के स्वाभिमान की, अन्याय पर न्याय की और अत्याचार पर राष्ट्र के उद्दीप्त स्वाभिमान की विजय है। औरंगजेब और राजसिंह के युद्ध की परिणति इतिहास का सच

है। कवि ने इस प्रसंग का अपने काव्य के लिए चयन कर उसकी सशक्त प्रस्तुति द्वारा अपनी अन्तर्दृष्टि के रुझान को जाहिर किया है।

'विजय-केतु' एक ऐतिहासिक काव्य है, किन्तु कवि का उद्देश्य इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं है, हो भी नहीं सकता। क्योंकि उसे काव्य गत सत्य में ढलना होता है। कवि वर्तमान की आंख से इतिहास को देख कर उसका पुनरसर्जन करता है और उसे अपने युग के लिए प्रासंगिक बनाता है। आज की नारी-समस्या को ही लें, तो वह चंचला के इर्दगिर्द घूमती नज़र आती है। पुरुष द्वारा नारी का उत्पीड़न, पति को स्वतंत्रता-पूर्वक वरण करने में सामाजिक बाधाएँ उनके प्रति उसका दबा-सहमा विरोध, सभी तो हमारे युग के जीवंत यथार्थ हैं। राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा स्वतंत्रता की रक्षा का प्रश्न आज भी उतना ही सच है। व्यक्तिवाद, आपसी फूट, अवसरवादिता आदि हमारी स्वतंत्रता व जनतंत्र के लिए चुनौती हैं। कवि इस ओर इंगित करता हुआ कहता है—

जब एक व्यक्ति के ही हित में, सम्मान राष्ट्र का बिकता है।
वह राष्ट्र अधिक दिन धरती पर, स्वाधीन नहीं फिर टिकता है।

आज राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से त्याग और बलिदान की प्रासंगिकता असंदिग्ध है।

राष्ट्रों के भाग्य बना करते, उस भू पर बसने वालों से।
गौरव का रक्षण होता है, गौरव पर मरने वालों से।

राजसिंह द्वारा औरंगजेब को लिखा गया पत्र भारतीय संस्कृति की उदारता और धार्मिक सहिष्णुता को रेखांकित करता है— राम-रहीम एक हैं/कृष्ण-खुदा भी वही/संबोधन विभिन्न हैं/तत्त्व तो है एक ही।

भाव व्यंजना की दृष्टि से रूपनगर की प्रतिक्रिया, चूंडावत का पराक्रम, प्रथमाहुति और महासमर आदि प्रसंग बड़े सशक्त हैं। कवि ने आहत स्वाभिमान से उत्पन्न उत्साह का बड़ा सजीव वर्णन किया है—

क्रोधित सिंहों से धीर वीर, रिपु शीश काटते हुए चले।
जय चरण चूमती हुई चली, वे भीड़ छांटते हुए चले।

'विजय-केतु' आठ सर्गों में विभक्त एक सफल प्रबन्ध काव्य है। कथानक में घटना-संकुलता होते हुए भी भाव व्यंजना को अपेक्षित विस्तार मिल सका है। काव्य की 'समाप्ति सन्धि प्रस्ताव' के बाद ही हो जानी चाहिए थी। इसके आगे 'अन्तःपुर की मर्यादा' और जोड़ने से काव्य के प्रभाव और गौरव की क्षति हुई है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता एवं ओजपूर्ण भाषा काव्य के प्रभाव को बढ़ाने में समर्थ हुई है। मुद्रण में कुछ अशुद्धियाँ होते हुए भी प्रकाशन कलात्मक तथा आकर्षक है। कृति का कुशल सम्पादन डॉ० हरि महर्षि ने किया है।

राष्ट्रीय चेतना की ओजपूर्ण सशक्त अभिव्यक्ति की दृष्टि से कवि श्री करुण का यह काव्य पठनीय और संग्रहणीय है।

□

पाठकीय-प्रतिक्रिया

डॉ. प्रेमलता दुआ, नई दिल्ली—मधुमती के जून अंक के 'प्रसंगवश' में देश की वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में 'एक दुर्भाग्यपूर्ण हादसा: एक विनम्र शोकांजली' प्रभावपूर्ण रही। डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय की काव्य-रचना-'कतरे जाते हुए' में नर-पिशाच की क्रूरताओं की शब्द-शब्द अभिव्यक्ति हुई है। डॉ. मूल चन्द सेठिया का लेख 'नागार्जुन की राजनीतिक कविताएं' शोधपूर्ण और ज्ञानवर्धक है। **डॉ. रामसनेही लाल शर्मा फीरोजाबाद**—'मई ९१' के सम्पादकीय में साहित्य की गरिमा का पुनराख्यान करके उसे प्रतिष्ठा दी गयी है। कहानियों और लघु कथाओं में 'विजय' 'समझदार लोग' और प्रत्युत्पन्नमति अलग-अलग कोणों से प्रभावित करती है। विजय में नारी की संघर्षशीलता और संकल्प चेतना का उद्‌घोष है। समझदार लोग में चुभ जीवन का कटु यथार्थ है। डॉ. उषा माहेश्वरी और हरीश करमचन्दाणी की कवितायें अच्छी हैं। लेख सभी विचारोत्तेजक और मौलिक हैं। सर्वश्रेष्ठ डॉ० सुरेन्द्र तिवारी का लेख है जो हिन्दी उपन्यासों पर अपनी सच्ची दृष्टि डालता है। **पूरनचन्द टण्डन, दिल्ली**—मधुमती हिन्दी साहित्य की ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अत्यन्त उत्कृष्ट पत्रिका है। विचारोत्तेजक ज्ञानवर्धक, रोचक तथा संग्रहणीय पत्रिका के सभी गुणों से समृद्ध एवं सम्पन्न इस पत्रिका को साहित्यिक-पत्रिकाओं में सर्वाधिक प्रासंगिक कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। वैचारिक गंभीरता एवं दृढ़ता के जीवनधर्मी आयामों को रुपायित करता सम्पादकीय-'प्रसंगवश' इसका 'प्राण' है तो विषय-वैविध्य की छवियां बिखेरता कथ्य इसकी 'आन' है। **डॉ. अंजु उबाना, बड़ौदा**—मधुमती का जून ९१ अंक पसंदीदा रहा। निःसंदेह पत्रिका की यह प्रगतिमय छाप है। डॉ० बद्री प्रसाद पंचोली का शब्द चिंतन 'बन्ना-बन्नी' हिन्दी भाषा विज्ञान के लिए उत्तरोत्तर ज्ञान का परिचय है। पाठकों को हिन्दी शब्दों की तह में जाने का अवसर मिला। **आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव, कुण्डा [उ. प्र.]**—मधुमती जून अंक के सभी स्तरीय लेख, कहानियां एवं कविताओं को पढ़ कर उसकी श्रेष्ठता का आकलन कर पाना कठिन है। इस अंक में डॉ० आरसु का लेख 'प्रसाद और प्रेमचन्द कितने पास कितने दूर' विश्लेषणात्मक, शोधपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक है। इस लेख में प्रसाद और प्रेमचन्द के साहित्य की तुलना जिस आधार पर की गई है वह बहुत कुछ न्यायोचित एवं समीचीन प्रतीत नहीं होती क्योंकि दोनों रचनाकार बेमिशाल और बेजोड़ हैं। प्रसाद न प्रेमचन्द को पा सकते हैं और न प्रेमचन्द प्रसाद

को। विधा, पात्र, आख्यान, रचना प्रक्रिया और संवेदनाओं के आधार पर जो तुलनात्मक विवेचन लेखक द्वारा किया गया वह इस दृष्टि से अधूरा है क्योंकि उसमें दोनों विभूतियों के जीवन दर्शन को समझा नहीं गया। दोनों के रचना स्तर पर जहां कहीं समानता असमानता दिखाई पड़ती है उसके मूल में यही दो बातें हैं। जीवन मापन की शैलियों और पारिवारिक परिवेश ने दोनों को अलग-अलग सोच और विचार दृष्टियां प्रदान की। लेखक का यह आरोप कि प्रसाद नहीं चाहते थे कि प्रेमचंद उनके समान बने निराधार है। वास्तविकता तो यह है कि दोनों रचनाकार द्वेष और भेदभाव भूल अपने फन में ही सदैव लीन रहे। कल्पना लोक की जिस ऊंचाइयों पर प्रसाद विचरते रहते उतना ही प्रेमचन्द यथार्थ के धरातल पर मजबूती से खड़े रहे। बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी में इन दोनों का व्यक्तित्व किसी महासागर की तरह अलग-अलग हिलोरे लेता रहा। रोमांच भरता रहा। **ओमपुरोहित, हनुमानगढ़**-मधुमती के जून अंक की सामग्री विगत तीन अंकों से श्रेष्ठ थी। प्रसंगवश में आपके विचारों ने एक नयी चेतना पैदा करने का प्रयत्न किया है। जीवन के सुख दुःख केवल तथाकथित भौतिक प्रगति में नहीं है वरन् इसके परे एक व्यापक गतिशीलता है जो मानव जीवन को प्रभावित करती है। डॉ० सुवास कुमार ने आचार्य चतुरसेन पर अपनी कलम चलाकर पहली बार उन्हें व्यापक रूप से मुखरित किया है। डॉ० आरसु, डॉ० मूल चन्द सेठिया, व डॉ० प्रेमशंकर के निबन्धों ने इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। दिबेन, विमा सक्सेना एवं डॉ० मनु की कहानियों ने प्रभावित किया वहीं ग़ज़ल व व्यंग्यों ने अपनी कोई छाप नहीं छोड़ी। इस अंक की कविताएं अपनी ओर आकर्षित करती है। डॉ० शंभु गुप्त, डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, बलदेव वंशी, मनजीत टिवाणा, डॉ० मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ, डॉ० जबरनाथ पुरोहित की कविताएं प्रभावित करने में सक्षम रहीं। **ओम प्रकाश तंवर तारानगर**–मधुमती जून १९९१ के अंक में प्रकाशित लगभग सभी लेख, कहानी, व कविताएं रोचक एवं आकर्षक लगीं। तेरा नाम लिख दिया, स्वर्ग में क्लर्की, बन्ना–बन्नी, सहयात्री, शहर छुरियों का, और विस्फोट के बाद आदि रचनायें विशेष रूप से पसन्द आई। **चित्रांश प्रितेन्द्र कायस्थ, जोधपुर**–जून अंक में आचार्य चतुर सेन शास्त्री की विचार दृष्टि, प्रसाद और प्रेमचन्द–कितने पास और कितने दूर, राष्ट्रीय अस्मिता की प्रमाणिका सुभद्राकुमारी चौहान आलेख पसन्द आये। इन आलेखों से पाठकों को काफी अच्छी जानकारी प्राप्त हुई। व्यंग्य रचना स्वर्ग में क्लर्की, शब्द चिन्तन में बन्ना–बन्नी, कहानी में मृगतृष्णा, सहयात्री रचना अच्छी लगी। **डॉ. राकेश मिश्र, बम्बई**–जून अंक मधुमती का भव्य रहा। 'शहर छुरियों का' ग़ज़ल सुन्दर सामयिक संतुलित थी। बधाई। कहानियां अच्छी रहीं। कवि अनिल वशिष्ठ की ग़ज़ल सार्थक, सामयिक सुन्दर है। **कुमार महेन्द्र तिवारी 'नीरज', बगुसरा [बिहार]**–मधुमती का जून १९९१ अंक सभी लेख अच्छे, विचारोत्तेजक एवं सार्थक हैं। कहानियों में दिबेन का खत और सिद्धेश का सहयात्री अत्यंत मार्मिक है। हास्यव्यंग्य की दोनों रचनाएं सुन्दर हैं। कविताएं रोचक एवं पठनीय हैं। श्री अनिल वशिष्ठ की गजल शहर छुरियों का बेहद पसन्द आयी। किताबें के अन्तर्गत 'साहित्य स्रष्टा' 'श्री विद्याधर शास्त्री' पर डॉ. पुष्करदत्त शर्मा की साफ सुथरी समीक्षा अच्छी

लगी। कुल मिलाकर यह अंक एक संग्रहणीय पुस्तक है। **अतुल मोहनप्रसाद, कोचस [बिहार]**–मधुमती के जून अंक में आचार्य चतुर सेन शास्त्री की विचार दृष्टि कई झरोखों को खोलती है। डा. सुवास कुमार का आलेख 'तेरा नाम लिख दिया' हास्य अधिक व्यंग्य कम। स्वर्ग में क्लर्की लघुकथा का आनन्द प्रदान करता है। डा. विभा सक्सेना का दूसरी जीत हृदय को स्पर्श करने वाली कहानी है। भगवती प्रसाद द्विवेदी की कहानी मृगतृष्णा भी अच्छी है। कविताएँ कुछ प्रभावित करने में सक्षम हैं कुछ ऊपर से गुजर जाने में माहिर। **आलोक श्रीवास्तव, प्रयाग**–इस बार का अंक अति सुन्दर था। युद्ध के संदर्भ की कविता अच्छी थी। 'शहर छुरियों का' के लेखक तो चिरपरिचित हैं। उनकी रचनाए बंधी हुई और सामयिक हैं। **सूर्यदेव पाठक 'पराग', भिट्ठी (बिहार)** प्रसंगवश में साहित्य के शाश्वत मूल्यों का अत्यन्त ही तथ्यपरक एवं रोचक विश्लेषण किया गया है। समकालीन कविता प्रकृति का पुनर्वास निबंध में जहां समकालीन कविता में प्रकृति के प्रति कवियों के आकर्षण को उदघाटित किया गया है वहीं सुरेन्द्र तिवारी तथा डा. महेश चन्द्र शर्मा के निबंध हिन्दी उपन्यासों से सम्बद्ध पक्षों की अच्छी जानकारी प्रस्तुत करते हैं। डॉ. रामचरण महेन्द्र के निबंध के द्वारा राजस्थान के नव नाट्य लेखन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। विपुल ज्वाला प्रसाद की कहानी 'रोशनी की शहतीर' नारी के भीतर छिपी अदम्य ऊर्जा से परिचित कराती है। **माया मृग, हनुमानगढ़**–प्रसंगवश के अन्तर्गत डा. विजय ने अभिव्यक्त साहित्यिकों के मनोभावों को समर्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। डा. मूलचंद सेठिया द्वारा लिखित निबन्ध 'नागार्जुन की राजनैतिक कवितायें' में विश्लेषणात्मक प्रयास निःसंन्देह सार्थक है। तेरा नाम लिख दिया (मदन शर्मा) का प्रारंभिक अंश चिन्तन परक एवं मारक व्यंग्य की क्षमता लिए हुए लगा किंतु उत्तरांश में लेखक ने अखबारी व्यंग्य की लीक पीटनी शुरू कर दी ऐसा लगा। 'स्वर्ग में क्लर्की' अति सामान्य प्रतीत हुआ। डा. बद्रीप्रसाद पंचोली का शब्द चिन्तन-'बन्ना-बन्नी' भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से संश्लेषणात्मक एवं रोचक लेख हैं। कहानी 'खत' एक बेचैनी छोड़ने वाली कथा लगी। 'मृगतृष्णा' (भगवती प्रसाद द्विवेदी) प्रारम्भ में जिस तरह विश्वसनीय ढंग से चलती है, वहीं अंत में एक प्रायोजित आदर्श की स्थिति लाने के चक्कर में कहानी की स्वाभाविकता नष्ट हो गई लगती है। 'दूसरी जीत' (विभा सक्सेना) मानव मन की विविधता और जटिलता को पूरे चिन्तन के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से रेखांकित करती है। कविता 'कतरे जाते हुए' (डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय) कवि की सामाजिक संपृक्ति को संपूर्णता से रूपायित करती है। डा. जवरनाथ पुरोहित की कवितायें, बलवीर सिंह करुण का गीत भी मधुमती के इस अंक की ऊर्जस्वी रचनाए हैं।

□

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

'राजस्थान का हिन्दी साहित्य' ग्रन्थ हेतु सामग्री आमन्त्रित

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा यथानिर्णय 'राजस्थान का हिन्दी साहित्य' ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। इस ग्रंथ के अन्तर्गत राजस्थान में भारतेन्दु युग से अद्यतन रचित हिन्दी साहित्य को समाकलित किया जाना है। ग्रन्थ को अग्रांकित विधाओं पर उनके सामने अंकित लेखक लिख रहे हैं :—

क्र. सं.	साहित्यिक विधा	लेखक
१.	कविता	श्री नन्द चतुर्वेदी, ३० अहिंसापुरी, उदयपुर
२.	उपन्यास	डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, ७४ शान्तिनगर, सिरोही
३.	कहानी	डॉ. भेरूलाल गर्ग, २ए-१८ विकासनगर, बूंदी
४.	नाटक	श्री जगदीश शर्मा, ५६ गोल्फ कोर्स, जोधपुर
५.	आलोचना	प्रो. मोहनकृष्ण बोहरा, २१ शांतिनगर, सिरोही
६.	काव्य शास्त्र	डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ,ई-४,सिविल लाइन्स,झालावाड़
७.	विविध	डॉ. मदन केवलिया, पार्वती सदन, कोटगेट, बीकानेर

उक्त लेखक अपने स्तर पर लेखन कार्य कर रहे हैं तथापि रचनाकार बन्धुओं से निवेदन है कि वे अपने द्वारा रचित साहित्य की जानकारी सम्बन्धित विधा-लेखकों को सीधे ही अथवा अकादमी कार्यालय में ३१ जुलाई, ९१ तक भिजवाने का कष्ट करें।

सचिव

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

राजस्थान साहित्यकार परिचय कोश ग्रन्थ हेतु परिचय आमंत्रित

राजस्थान साहित्य अकादमी, की संचालिका के निर्णयानुसार 'राजस्थान साहित्यकार परिचय कोश' ग्रन्थ अद्यतन तैयार कर प्रकाशित करवाया जा रहा है। अतः जिन लेखकों/साहित्यकारों ने पूर्व में इस ग्रन्थ में प्रकाशनार्थ अपना परिचय व कृतित्व संबंधी सूचनाएं अकादमी में नहीं भिजवायी हैं कृपया वे अपना परिचय निम्नांकित प्रारूप में पासपोर्ट आकार के छाया चित्र सहित ३१ जुलाई, ९१ तक अकादमी कार्यालय में भिजवाने का कष्ट करें :—

१. नाम
२. जन्म तिथि व स्थान
३. शैक्षिक योग्यता
४. व्यवसाय
५. वर्तमान पता
६. स्थायी पता
७. प्रकाशित साहित्य विवरण
८. अन्य

सचिव

इस अंक के लेखक

डॉ. वीरेन्द्रसिंह,
५ झ १५, जवाहर नगर, जयपुर (राज.)

प्रो. डॉ. महावीर सरन जैन,
स्नातकोत्तर हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर (म. प्र.)

डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे,
ब–६, प्रोफसर्स बंगले, सागर वि. वि.
सागर (म. प्र.)

वाई सी. पी. वेंकटरेड्डी,
यर्राविंका पल्ली, वेल्लामद्दी, (पो.) वाया पटनम–५१५५०१, जि. अनंतपुर (आ. प्र.)

श्री रामदरश मिश्र,
आर–३८, वाणी विहार, उत्तम नगर,
नई दिल्ली

ऊर्जमशी परमार,
७५–समर्थनगर, इंदिरा पुल के पास,
हंसोल (अहमदाबाद)–३८२ ४७५

उमेश अपराधी,
खेड़ा, हिण्डोन, सवाईमाधोपुर

संतोष पारीख 'नीरज',
विट्ठलदास पोरवाल का मकान, पुराने अस्पताल के पास, बारां, जि. कोटा (राज.)

रामेश्वर शुक्ल अंचल,
पढ़पेढ़ी, दक्षिणी सिविल लाइन्स,
जबलपुर (म. प्र.)

जहीर कुरेशी,
समीर कॉटेज, सूर्यनगर, ग्वालियर (म.प्र.)

डॉ. शीलवर सिंह,
जामताड़ा कॉलेज, जामताड़ा (दुमका)
बिहार

डॉ. रवीन्द्रनाथ सिंह,
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास–६०० ०५९

रघुनाथ प्रसाद विकल,
९– कितदवईपुरी, पटना ८०० ००१

हिम्मत लाल त्रिवेदी तरंगी,
नागर मोहल्ला, बांसवाड़ा

डॉ. हरदत्त शर्मा 'सुधांशु',
प्राचार्य, महारानी श्रीजया महाविद्यालय
भरतपुर

राधेश्याम मंजुल,
११६–आर्यनगर, अलवर (राज.)

नमोनाथ अवस्थी,
डोरावली, खेड़ला, सवाईमाधोपुर

जगदीश चन्द्र शर्मा,
पो. गिलूण्ड, उदयपुर

नरपतचन्द सिंघवी,
१ मोतीलाल बिल्डिंग, जोधपुर (राज.)

श्रीमती विमला सिंहल,
बी–१८८, शास्त्रीनगर, भीलवाड़ा (राज.)

भगवती लाल व्यास,
३५, खारोल कॉलोनी, फतहपुरा
उदयपुर (राज.)

डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा,
१२४, बिग्नाणी बिल्डिंग, अलखसागर,
बीकानेर–३३४ ००१

महेशचन्द्र पुरोहित,
चन्दूलाल जी उपाध्याय का मकान,
मोहन कॉलोनी, बांसवाड़ा ३२७ ००१

डॉ. राधेश्याम शर्मा
५०९, गोविन्दराजियों का रास्ता,
चांदपोल बाजार, जयपुर

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

नवीन प्रकाशन

१. **क्रान्तिचेता विजय सिंह पथिक** सं. प्रो. घनश्याम शलभ ११०/– रु.
इस ग्रन्थ में राजस्थान के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, स्वाधीनता सेनानी व प्रजा मण्डल आन्दोलन के दौरान बिजोलिया किसान आन्दोलन के सूत्रधार स्व. श्री विजय सिंह पथिक की अभी तक अप्रकाशित साहित्यिक रचनाओं का संकलन है साथ ही उनका मूल्यांकन भी नई पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत।

२. **महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण** सं. डॉ. दयाकृष्ण विजय ५०/–रु.
महाकवि व प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी श्री सूर्यमल्ल मिश्रण के साहित्य व जीवन के अनूठे पहलुओं को उजागर करने वाला उल्लेखनीय ग्रन्थ।

३. **मेरी रचना प्रक्रिया** सं. डॉ. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना ५५/– रु.
इस ग्रन्थ में राजस्थान के शीर्षस्थ १६ रचनाकारों द्वारा अपनी रचना प्रक्रिया के सम्बन्ध में सृजित लेख हैं। यह पुस्तक लेखक की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध हो सकती है।

४. **राष्ट्रीय एकता और रचनाधर्मिता** सं. डॉ. प्रकाश आतुर ५०/– रु.
राष्ट्रीय एकता के स्वरूप, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य और रचनाधर्मिता के अन्तःसम्बन्धों को व्याख्यायित करने वाले विचारोत्तेजक निबन्धों का अनूठा संकलन।

५. **समकालीन मराठी कहानियां** सं. डॉ. चन्द्रकांत बाँदिवड़ेकर ८०/– रु.
इस संकलन में मराठी के उन कथा शिल्पियों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद है जो मुख्यतः साठोत्तरी पीढ़ी के रचनाकार हैं और मराठी कथा परम्परा के विकास एवं समृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। संग्रहणीय संकलन।

६. **रेत पर नंगे पाँव** सं. नन्द भारद्वाज ७५/– रु.
राजस्थान के हिन्दी कवि श्रृंखला का तीसरा भाग। पूर्व-प्रकाशित दो खण्डों में सम्मिलित कवियों को छोड़कर प्रांत के उन ३१ सशक्त काव्य हस्ताक्षरों की रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन जो समकालीन कविता की केन्द्रीय संवेदना और उसकी विशिष्ट पहचान का आकार देने की रचनाधर्मी की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

७. **तपती धरती का पेड़** सं. हेतु भारद्वाज ६५/– रु.
यह कृति 'राजस्थान के कहानीकार' श्रृंखला का तीसरा भाग है जिसमें प्रांत के उन २० कथाकारों की रचनायें सम्मिलित हैं जो पूर्व प्रकाशित दो कथा-संकलनों में सम्मिलित नहीं हैं। सुरुचिपूर्ण प्रकाशन।

अकादमी प्रकाशन सूची प्राप्त कीजिये। अधिकृत एकमात्र वित. पंचशील प्र. जयपुर

डॉ. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा प्रकाशित एवं श्री ललित टंडन, महावीर प्रिन्टिंग प्रेस, उदयपुर द्वारा मुद्रित।